मानस चतुश्शताब्दी विशेषांक

शीराज़ा

हिन्दी

वर्ष ८ अंक ४

(मार्च १९७२)

सम्पादक : श्याम लाल शर्मा

ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू

शीराज़ा

(हिन्दी)

मानस चतुश्शताब्दी अंक

वर्ष ८ अंक ४

(मार्च १९७२)

सम्पादक
श्यामलाल शर्मा

ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू

वार्षिक शुल्क—८) रु०　　एक प्रति—¯) रु०

सम्पादकीय पत्र व्यवहार

सम्पादक शीराज़ा हिन्दी
ललित-कला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी
कनाल रोड, जम्मू

फोन ५०४०

सैक्रेटरी द्वारा जम्मू कश्मीर अकादमी के लिये प्रकाशित तथा
अमर आर्ट प्रेस, मोती बाज़ार जम्मू में मुद्रित हुआ।

वर्ष ८ अंक ४
मार्च १९७२

शीराज़ा हिन्दी वर्ष ८, अंक ४ (मार्च १९७२)

अनुक्रमणिका

———

सम्पादकीय

रामचरित मानस की महत्ता

तुलसीदास जी का समय वह समय था जब बाह्य आक्रमणों और भीतरी फूट के कारण भारत का राजनीतिक जीवन बलहीन तथा श्रीहीन हो चुका था। इस विवशता ने 'कोऊ नृप होय हमि का हानि' की धारणा पक्की करदी थी और हिन्दु समाज समष्टि की भावना भूल कर व्यष्टि जीवन में कूर्मसदृश संकुचित हो गया था। मतमतान्तरों की संख्या तथा उनका पारस्परिक टकराव तथा पारस्परिक व्यवहार में सहिष्णुता की भावना का त्याग विदेशी शत्रु को एक-एक सम्प्रदाय को छिन्न-भिन्न कर देने के लिये प्रोत्साहन दे रहा था। वैष्णव और शैव एक दूसरे को उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखते थे। ऐसे समय में तुलसी दास जी ने रामचरित मानस लिखकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का आदर्श जनता के सामने पेश किया और भक्तिभाव की मदाकिनी सारे देश में बहाकर राष्ट्र प्रेम तथा आत्मबोध की भावना जागृत की।

व्यष्टि तथा समष्टि जीवन

व्यक्ति पारिवारिक जीवन में, सामाजिक जीवन में तथा राष्ट्र जीवन में सात्विक तथा सद्भाव से अपना कर्तव्य पालन करता जाये तो समाज स्वाभविक गति से चलता है।

यदि कहीं व्यक्तिगत स्वार्थ या कुछ व्यक्तियों का स्वार्थ राष्ट्रहित से टकराने लगता है तो विषय चिन्ता जनक हो जाता है। व्यष्टि जीवन सभ्यता और संस्कृति की चरम सीमा होते हुए भी राष्ट्र जीवन के लिये श्रेयस्कर नहीं होता। व्यक्ति की महत्ता तभी होती है जब वह शृंखला की कड़ी होता है। उस समय प्रत्येक कड़ी शृंखला का अंग होती है और शृंखला की दृढ़ता का

द्योतक होती है। व्यक्तिगत रूप में प्रत्येक कड़ी का मजबूत होना परमावश्यक होता है। परन्तु किसी मत्त हाथी को बान्धने के लिये समस्त शृंखला का मजबूत होना अनिवार्य होता है। राजनीतिक जीवन की बलहीनता व्यक्तिगत जीवन को सामाजिक जीवन से पृथक करती है। नवम शताब्दी से बाह्य आक्रमणों का मुकाबला करते करते मुगलों के शासन काल तक भारतीय समाज शिथिल होने लगा था। समाज में एक निराशा और विवशता का वातावरण व्याप्त हो रहा था। जब स्वराज्य नहीं रहता तो सुराज्य की कल्पना धूमिल हो जाती है। ऐसी अवस्था में धर्म एक मात्र साधन रह जाता है जो समाज को संगठित रखता है। परन्तु ऐसा धर्म जो समन्वय की भावना रखता हो। सब मत मतान्तरों तथा विचारधाराओं के लिये आदर की भावना सिखाता हो। आपस में सामञ्जस्य स्थापित करता हो।

तुलसीदास जी के रामचरित मानस ने भरत के धरोहररूप में राज्य को सम्भालने में तथा सर्वधर्म समन्वय की भावना के प्रसार से ये दोनों कार्य सम्पन्न किये। मेघनाद से आहत लक्ष्मण (भारतीय समाज) को सञ्जीवनी देकर सचेत किया। भारतीय समाज तुलसीदास जी का सदैव आभारी रहेगा।

हिन्दी का गौरव ग्रन्थ

संस्कृत भाषा भारत की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती रही है। बाहर के लोगों ने यदि भारत को जाना है तो संस्कृत के माध्यम से। विलियम जोन्स, ग्रिफिथ, मैक्सम्युलर, विलसन, स्टेन, टानी आदि विद्वानों ने संस्कृत के के माध्यम से ही भारतीय संस्कृति का परिचय बाह्य संसार को दिया है।

भारतीय विद्वत्ता संस्कृत के ज्ञान और पाण्डित्य में ही त्राण पाती रही है। बौद्ध और जैन धर्मों ने प्राकृत पालि, अपभ्रंश भाषाओं की सहायता से अपना प्रचार तथा प्रसार बढ़ाया। परन्तु हम देखते हैं कि सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य और जैन साहित्य का प्रमुख भाग संस्कृत में प्राप्य है। बौद्ध धर्म विश्वधर्म बना तो संस्कृत के माध्यम से। परन्तु तुलसी ने अवधी में रामचरित मानस का निर्माण कर उसे सार्वदेशीय कलेवर पहना दिया। अवधी (हिन्दी) को समस्त भारत की भाषा बना दिया। तत्कालीन विद्वानों ने तुलसी को कवि मानने से इन्कार किया परन्तु तुलसी की जन भाषा ने तुलसी और रामचरित मानस को अमर कर दिया।

आज का प्रान्तवाद और प्रान्तीय भाषा का उग्रवाद हिन्दी के अस्तित्व से इन्कारी हो रहा है। यह हर्या..वी है, यह बांगरु है, यह व्रज है, यह अवधी है मैथिली है, राजस्थानी है, पिंगल है, डिंगल है, मालवी है। तो फिर हिन्दी कहां है ? ये स्थानीय भाषाएं अवश्य हैं परन्तु इनका उद्गम और तना एक है। हम समूचे बनके पृथक २ वृक्ष को गिनकर बनके अस्तित्व से इन्कार करने पर तुल गये हैं। तुलसी का रामचरित मानस हिन्दी का गौरव ग्रन्थ है, जायसी का पद्मावत हिन्दी का गौरव ग्रन्थ है। सूर का सूरसागर हिन्दी का गौरव ग्रन्थ है, विद्यापति की पदावली हिन्दी का गौरव ग्रन्थ है। चन्द्रबरदाई का पृथ्वीराजरासो हिन्दी का गौरव ग्रन्थ है। यदि ये ग्रन्थ 'हिन्दी के ग्रन्थ नहीं तो फिर हिन्दी क्या रहेगी। हिन्दी किसे कहेंगे। जैसे कोई शरीर के भिन्न २ अंगों के पृथक अस्तित्व में दृढ़ विश्वास रखते हुए शरीर के अस्तित्व को ही झुटलाने में तुल जाये तो क्या कहेंगे। इसी प्रकार कई विद्वान भाषाई तत्वों की विभिन्नता का आश्रय लेकर ऊपर लिखी भाषाओं को हिन्दी से पृथकसिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं। आंख आंख है, सिर सिर है पेट पेट है, टांग टांग है परन्तु इनका समूह ही तो शरीर है। यदि हम अंगों की पृथकता ही देखते रहे तो शरीर को कहां पायेंगे। तुलसी का भक्ति भावना से ओत प्रोत रामचरित मानस हिन्दी का ग्रन्थ ही नहीं हिन्दी का गौरव तथा प्रतिनिधि ग्रन्थ है। तुलसी ने सतरहवीं शताब्दी में राष्ट्रभाषा हिन्दी का मानचित्र तैयार कर दिया था। उनकी भविष्य कल्पना कितनी यथार्थ थी।

धर्म निरपेक्षता का अर्थ संकोच

हिंदु धर्म की पर-धर्म सहिष्णुता जगत्प्रसिद्ध है। भारत में आने वाले यूनानी, पार्थियन, सिथयन पारसीक मंगोल आदि यहां आये, बसे और यहां के ही हो गये। भारत की किसी भी शासन प्रणाली ने उन्हे निम्न स्तरीय नागरिक नहीं समझा। किसी व्यक्ति के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार हुआ हो इसकी मिसाल नहीं मिलती। तुलसीदास जी के समन्वयवाद ने राजनीतिक बलहीनता और श्रीहीनता के काल में भी इस भावना को अक्षुन्न बनाये रक्खा। अब सदियों की दासता के पश्चात् जब भारत पुनः स्वतन्त्र हुआ है और अपने भाग्य का विधाता बना है तो उस समन्वयवाद की भावना को उसने 'सैक्युलरिज़्म' के नाम से अपनाया है। परन्तु इस नव उत्साह में धर्म निरपेक्षता की इस नीति को इस सीमा तक खैंचा जा रहा है कि आत्म विस्मरण और आत्म प्रतारण का सा वातावरण उत्पन्न हो गया है।

सैक्युलरिज़्म के नाम पर आत्म विस्मरण तथा आत्म प्रतारण की इस भावना को क्या कहा जाये। आत्म अवहेलना (Selfabnegation) के इस जबरदस्ती के आचरण ने भारत को ८५ प्रतिशत जनसंख्या में स्वाभिमान की भावना को विलुप्त कर दिया है। लोकतन्त्र (जम्हूरियत) में बहु संख्या के मत से निर्णय होता है उनकी इच्छा नुसार निर्णय होता है यहां भारत में तुष्टीकरण की नीति के कारण बहुसंख्य की भावनाओं को ठुकरा कर अल्पसंख्यकों की इच्छा को फूल चढ़ाये जाते हैं। यहां ५५ करोड़ की जनसंख्या में दस लाख जनसंख्या वाला नागालैण्ड सदा सदा के लिये भारत को राष्ट्र भाषा हिन्दी को अपना यथार्थ पद ग्रहण करने से रोके रख सकता है। हमने सैक्युलरिज़्म के नाम पर आत्म-अवहेलना को इतना प्रश्रय क्यों दे रक्खा है।

राष्ट्रीय करण या रामबाण औषधि

सैक्युलरिज़्म और प्रगतिवाद के नाम पर एक और धारणा जो अपनी केन्द्रीय सरकार में दृढ़ हो गई है राष्ट्रीयकरण की है। राष्ट्रीयकरण सरकार को रामबाण औषधि के रूप में प्राप्त हो गया है। सरकार आजकल के कई नीम-हकीमों की भान्ति एक पेटेण्ट औषधि को सब बीमारियों के लिये प्रयोग में लाती है परन्तु परिणाम लाभ के स्थान पर हानि के रूप में सामने आता है। जहां याता-यात के साधन पब्लिक के हाथ में होते हैं तो Competition में वे गवर्नमैंण्ट की निस्बत अधिक शिष्टता तथा सभ्यता का व्यवहार करते हैं, किराया भी तुलनात्मक ढंग से सरकारी रेट से कम होता है और उनको आर्थिक लाभ भी बहुत होता है। प्राइवेट मोटर सर्विस कम्पनी तीन चार वर्ष में अपने व्योपार का कितना विस्तार कर लेती है परन्तु वही कम्पनी जब Nationalized हो जाती है तो घाटे में जाना शुरू हो जाती है। Nationalized उद्योग क्यों घाटे में जाते हैं? व्यक्ति वही होते हैं परन्तु सोचने और कार्य करने का ढंग क्यों बदल जाता है?

राष्ट्रीय करण का भी सैक्युलरिज़्म की भान्ति अर्थ संकोच तथा भाव परिवर्तन हो गया है। मानव चतुश्शताब्दी के समन्वयवादी परिप्रेक्ष्य में हम गम्भीरता से चिन्तन करें कि गलती कहां है जैसे केवल दवाई का नाम रटने से रोग दूर नहीं होते इसी प्रकार समन्वयवाद के नाम पर तुष्टीकरण तथा सब कार्य अपने हाथ में ले लेने से उपचार नहीं होने का। करोड़ों रुपया हम अपनी योजना

पर खर्च कर देते हैं क्या हम अपने कुछ क्षण स्पष्ट चिन्तन और यथार्थ आचरण तथा उचित पद्धति के निर्धारण के लिये नहीं निकाल सकते ? मानस चतुश्शताब्दी समारोह अखिल भारतीय स्तर पर मनाने के लिये भारत सरकार ने एक केन्द्रीय समिति का गठन किया था परन्तु सैक्युलरिज्म के दबाव ने तुलसी दास जी को हिन्दु सन्त सिद्ध करके मानस चतुश्शताब्दी समारोह को सरकारी स्तर पर मनाने से हाथ खींच लिया। हमारी सैक्युल सरकार की दृष्टि में गालिब सैक्युलर है परन्तु तुलसीदास हिन्दु है फिरका परस्त है। सैक्युलरिज्म का यह चिन्तन भारत को कहां ले जाने वाला है ?

तुलसी की दार्शनिकता

—शक्ति शर्मा

तुलसी की प्रतिभा बहुमुखी थी। वह एक साथ ही कवि, भक्त, सुधारक और दार्शनिक थे। भक्तों के तोष और आनन्द के लिए भक्ति की पुण्य सलिला तो उनके समस्त काव्य में हिलोरें लेती ही रहती है पर ज्ञानी-जनों के लाभ के लिए भी तुलसी ने दर्शन-शास्त्रों की विभिन्न दृष्टियों का संपादन किया है। मूलतः तुलसी दार्शनिक नहीं भक्त थे इसलिए उन्होंने दर्शन शास्त्र की विभिन्न मान्यताओं को भी भक्ति से आप्लावित किए रखा। उन्हों ने 'नाना निगम पुराण' का अध्ययन किया था इसलिए उन्हें किसी एक वाद या विचार-धारा में बंधे रहना स्वीकार्य नहीं था परिणाम स्वरूप दर्शन सम्बन्धी विचारधारा में तुलसी ने विभिन्न वादों और मान्यताओं का सम्मिश्रण किया। 'मानस' और 'विनय पत्रिका' मुख्यरूप से तुलसी के दार्शनिक ज्ञान की दक्षता के परिचायक हैं। अपने ग्रंथों में दर्शन शास्त्र की विभिन्न समस्याओं, ईश्वर, जीव जगत्, माया, ज्ञान भक्ति आदि का जो विस्तृत विवेचन किया है उसको पढ़कर तुलसी किसी भी दर्शनवेत्ता से कम नहीं लगते।

तुलसी ने ईश्वर के जिस रूप की कल्पना की है वह परम अद्वितीय ब्रह्म है। वह सर्वत्र रमता है इसलिए 'राम' है। तुलसी ने राम को परम ब्रह्म की संज्ञा से विभूषित किया है। ब्रह्म रूप राम सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। वह सृष्टि के कर्त्ता, भर्त्ता और संहर्ता हैं इसलिए राम में ब्रह्मत्व, विष्णुत्व और शिवत्व तीनों का समन्वय हुआ है।

इसी ब्रह्म के दो रूप हैं:—सगुण और निर्गुण। निर्गुणात्मक पक्ष में राम अरूप, अव्यक्त, अकार, अनाम, मायारहित, नित्यमुक्त और नित्ययुक्त हैं :—

"व्यापक ब्रह्म अखंड अनन्ता। अखिल अमोघ एक भगवन्ता॥
सोई सच्चिदानन्द घनश्यामा। अज विज्ञान रूप गुण धामा॥
अगुण अदम्य गिरागोतीता। समदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्गुण निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा॥

पर राम के इस रूप को भक्त कैसे समझें? यह एक विवादास्पद समस्या थी। इसलिए तुलसी ने राम के सगुण रूप की कल्पना की। ज्ञानियों का निर्गुण ब्रह्म ही भक्तों की इच्छा पूर्ति के लिए सगुण रूप धारण करता है :—

'अगुन अरूप अलख जो होई। भगत प्रेम वस सगुन सो होई॥"

सगुणात्मक रूप में राम भक्त वत्सल, रंजनकारी, खलहर्ता और संतों के पालनकर्ता हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे मुनि-मानस-हंस हैं और त्रिदेवों के भी पूज्य हैं।

जीव को तुलसी ने 'ईश अंश जीव अविनासी' कहकर ईश्वर की तरह ही अमल और अविनासी माना है। मूलतः वह ईश्वर का अंस है इसलिए उसी की तरह नित्य और सत्य है। किंतु ईश्वर से अलग होने पर मायावशीभूत होकर वह संसारी हो जाता है। संसारी रूप में वह अनेक संकल्पों-विकल्पों से आवृत्त होकर दुःख-सुख का भोक्ता है :—

'एक दुष्ट अतिसय दुःखरूपा। जाबस जीव परा भवकूपा॥
सो माया बस भयउ गोसाईं। बंध्यो कीर मर्कट की नाईं॥
तब ते जीव भयेउ संसारी। छूट न ग्रथि होई न सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरूझाई॥"

पर ईश्वर इन सब संकल्पों-विकल्पों से परे है वह स्वतन्त्र और एकमात्र है जब कि जीव परबस और परतन्त्र है :—

"माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुण खानी।
परबस जीव स्वबस भगवता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥"

जगत् के सम्बन्ध में तुलसी के तीन मत हैं :—जगत् असत्य है, जगत् सत्य है, जगत् सत्य-असत्य दोनों भ्रमों से परे है। पहले मत की पुष्टि में तुलसी

शीराजा

का तर्क है कि जगत परिवर्तन-शील है इसलिए असत्य है, मिथ्या है। मोहमाया में फंसे जीव को सत्य अवश्य भासित होता है पर यह भ्रम सर्प में रज्जू के भ्रम के तुल्य ही है :—

"जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सुहाया॥"

× × × ×

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि॥

पर दूसरी ओर तुलसी ने जगत् को 'सियाराममय' माना है—फिर मिथ्यात्व का आरोप ? यहां तुलसी के दृष्टिकोण में अन्तर दिखाई देता है। यह ठीक है कि जगत में परिवर्तन होता है पर उसकी विद्यमानता हर क्षण बनी रहती है। इसकी पुष्टि तुलसी ने राम के उदर में कौशल्या और काकभुशुण्डि को सारे ब्रह्माण्ड के दर्शन करवा कर की है। सृष्टि का प्रवाह अनादि और अनन्त है, वह कभी व्यक्त रूप में और कभी अव्यक्त रूप में, कभी सृष्टि रूप में और कभी प्रलय रूप में विद्यमान अवश्य रहता है। जीव को यह जगत राम से अलग अवश्य भासित होता है पर जब वह अपना नाम और गुण, रूप खोकर राम में पुनः लीन हो जाता है तो पुनः स्थायित्व को प्राप्त कर लेता है। इस तरह जगत् अपने उपादान कारण रूप से भिन्न कोई अन्य वस्तु नहीं। परन्तु अंत में तुलसी जगत की असत्य और सत्य दोनों मान्यताओं को झुठला देते हैं :—

कोउ कह सत्य झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल कोउ माने।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥

इस तरह तुलसी की दृष्टि में राम ही नित्य निदान है, वही कालों के काल हैं, महाभूतों के भूत हैं इसलिए जगत् की सत्यता असत्यता उन्हीं पर आश्रित है मिट्टी अनेक घट-पात्रों में परिणत होती है किंतु उसका मृत्तिकात्व क्षीण नहीं होता। इसी प्रकार राम ही विश्वरूप में परिणत होते हैं पर उनमें कोई विकार नहीं होता।

माया आदि शक्ति है जो समस्त सृष्टि की रचना स्थिति और संहार करने वाली है। माया राम का आश्रय पाकर ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि करती है। अब राम की माया दो रूपों में उपलब्ध होती है :- एक अविद्या दूसरी विद्या। अविद्या संसृति का हेतु और विद्या जीवको संसृति से मुक्त करती है। प्रवृत्तिमार्ग के

पथिक अविद्या की ओर बढ़ते हैं और निवृत्ति पथ के राही 'विद्या' के वशीभूत होते हैं। माया के इस भ्रम-चक्र से विमुक्त होने का एकमात्र मार्ग भक्ति है। केवल भक्ति ही जीव को माया की उलझन से मुक्त कर सकती है।

इस तरह तुलसी ने ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन भक्ति को माना है। ज्ञान भी मान्य है पर भक्ति की अवहेलना करके नहीं। भक्ति से ज्ञान की सृष्टि होती है और ज्ञान प्राप्त करने पर भी भक्ति का अस्तित्व बना रहता है। दोनों एक दूसरे पर अवलम्बित हैं किन्तु भक्तहृदय होने के कारण तुलसी ने राम के सगुण रूप को ही अपनाया है।

इन सभी का पर्यवेक्षण करने के बाद प्रश्न उठता है कि तुलसी का दर्शन किस कोटि में रखा जाए। क्या तुलसी अद्वैतवादी थे, विशिष्टाद्वैतवादी या द्वैत द्वैतवादी। तुलसी को किसी एक विचारधारा में बांधना उनके प्रति अन्याय होगा। उन्हों ने विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय करके समन्वयवादी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। कहीं उन्होंने अद्वैतवादियों की तरह ब्रह्म को सच्चिदानंद स्वरूप मान कर परमद्वैत एकरूप माना है। उसकी अनिर्वचनीय शक्ति माया की पुष्टि भी शंकर के दर्शन के अनुसार ही है पर इतने में ही वह मात्र अद्वैतवादी नहीं बन जाते। शंकर के मतानुसार माया किसी के अधीन नहीं रहती पर तुलसी ने माया को रामाधीन माना है तुलसी जीव को ईश्वर का अंश मानते हैं पर अद्वैतवादी 'अंश इव कल्पित' कह कर चुप हो जाते हैं।

इसी तरह तुलसी ने रामानुज के विशिष्टद्वैतवाद की तरह ईश्वर को विश्व का कर्त्ता, भर्त्ता और संहर्ता तो माना है, जीव अविनाशी कहकर रामानुज के दर्शन की पुष्टि भी की है पर तुलसी ने उनकी तरह ईश्वर के पंच प्रकारत्व का प्रतिपादन नहीं किया।

तुलसी वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद से भी प्रभावित हुए पर उन्होंने वल्लभ की तरह ब्रह्म के भेद निरूपण कृष्ण, अक्षर और अन्तर्यामी को स्वीकार नहीं किया। वल्लभ सम्प्रदाय में चर्चित अनेक लोकों, रासलीला, सखीभाव आदि के प्रति तुलसी की निष्ठा नहीं। तुलसी विभिन्न पुराणों आगम निगमों के अध्येता थे इसलिए उन्हों ने सभी की विचारधाराओं का अपनी रुचि अनुसार चुन कर अपने काव्य में प्रतिपादित किया। यही कारण है तुलसी कवि हो या दार्शनिक भक्त हो या सुधारक सर्व साधारण को ग्राह्य है सब ने अपनी-अपनी तुष्टि के लिए उनके काव्य में से इच्छित वस्तु प्राप्त की है।

हिन्दू संस्कृति का सारभूत ग्रन्थ

"रामचरितमानस"

—मृदुला खन्ना

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दू संस्कृति के अनन्य पुजारी थे। उन्होंने 'मानस' में उन सब आदर्शों का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया है जिन्हें देखकर हिन्दू हृदय पुलकित होता है। हिन्दू संस्कृति के आध्यात्मिक और भौतिक जीवन की वह सभी विशेषताएं 'मानस' में पुंजीभूत हुई हैं जिनके कारण भारत सदा गौरवान्वित रहा है जैसे परम सत्ता में विश्वास, कर्मवाद एवं पुनर्जन्म दैविशक्तियों के प्रति आस्था, धर्म के लक्षण, वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कार, रहन-सहन और वेशभूषा, राजनैतिक प्रणाली तथा कलात्मक उपादान। हिन्दू संस्कृति की इन्हीं विशेषताओं का आधार लेकर हम अपने विषय का सम्यक् विवेचन करेंगे।

आध्यात्मिक पक्ष:—

आध्यात्मिक अनुभव सम्पूर्ण भारतीय चिंतनधारा का आधार है। 'मानस' में भारतीय दर्शन की विभिन्न विचारधाराओं का सम्मिश्रण हुआ है। हमारे यहां ईश्वर की सत्यता पर हमेशा विश्वास रहा है। कोई ऐसी सत्ता है जिसके द्वारा इस विश्व का संचालन और नियमन होता है—ऐसा हमारे सभी शास्त्र ग्रन्थ स्वीकार करते हैं। वेद में 'तदेकम्', 'वह एक है' की भावना व्याप्त

है। पुराणों[1] में वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञानी माना गया है। गीता[2] में वह तीनों लोकों में प्रवेश करने वाला जगत की उत्पत्ति का कारण माना गया है। तुलसी ने 'मानस' में उसी परम सत्ता को 'राम' की संज्ञा दी है। उन्होंने "राम ब्रह्म। परमारथ रूपा" कह कर राम को पूर्ण ब्रह्म और सर्वशक्तिमान माना है। तुलसी के राम 'सहजरूप भगवान' हैं। वह 'अखिल-अमोघ शक्त भगवंता' हैं। ब्रह्माण्ड व्याप्त भिन्नता में वह ही एकमात्र स्थायी तत्व हैं। उनकी स्तुति में तो वेद भी 'नेति नेति' कहकर चुप हो जाते हैं।

भारतीय साधना में इसी मूलभूत सत्य के सगुण और निर्गुण दो रूप स्वीकार किए गए हैं। वह देहादिक सम्बन्धों से रहित होने पर भी सब को धारण करने वाला माना गया है।[3] इसी तरह तुलसी के राम भी जहां एक ओर अविगत, अलख, अनादि हैं तो दूसरी ओर भक्तों के लिए सगुण रूप भी धारण करते हैं। यही कारण है कि तुलसी ने 'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा' कह कर राम को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों से सम्पन्न बताया है। इसी कारण दाशरथि राम के 'सुखारी' रूप का वर्णन करते हुए भी तुलसी की दृष्टि राम के अलौकिकत्व और ब्रह्मत्व पर से क्षणभर के लिए भी नहीं हटी।

'मानस' में वर्णित जीव जगत और माया सम्बन्धी धारणा भी हिन्दू धारणानुकूल है। तुलसी ने राम को ही जगत का निमित्त और उपादान कारण माना है। संसार की जितनी भी वस्तुएं हैं उनके अधिपति पूर्ण ब्रह्म राम ही हैं अतः समस्त विश्व का संचालन और नियमन भी उन्हीं के द्वारा ही होता है। 'मानस' में राम ने स्वयं स्वीकार किया है कि:—

'सब मम प्रिय सब मम उपजाए।' और
मम माया सम्भव संसारा। जीव चराचर जगत पुकारा॥'

अतः जगत तत्त्वतः राम रूप है। माया भी राम की शक्ति से ही उद्भूत होता है। समस्त विश्व तो माया के पाश में बद्ध है पर राम मायाधिपति हैं इसलिए मायात्मक सत्ता से अछूते हैं तभी तो लिखा है :—

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥
सोई प्रभु भ्रू विलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥[4]

---

१. विष्णु पुराण ६-८६
२. श्रीमद्भगवद्गीता ६।१७।१८
३. श्रीमद्भगवद्गीता १३.१४
४. रामचरितमानस ७।७२

जीव भी मूलतः ईश्वर का ही अंश है परन्तु भावात्मक भ्रम के कारण आत्मस्वरूप को भूलकर सांसारिक आकर्षण में बंध जाता है :—

"ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो माया बस भयउ गोसाईं। बंध्यो कीट मर्कट की नाईं॥
तब से जीव भयउ संसारी। छूटिन ग्रन्थि न होई सुखारी॥[1]

पुनर्जन्म और कर्मवाद :—

हमारी संस्कृति में कर्मवाद और पुनर्जन्म के अन्योन्याश्रित सम्बन्धों में विश्वास किया जाता है। पुराणों[2] की धारणा है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। उपनिषदों में "पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन" कहकर इस बात का समर्थन किया है। गीता में "गहना कर्मणा गति" कह कर व्यक्ति के दुःख सुख के लिऐ अपने कृत कर्म ही उत्तरदायी ठहराए गए हैं। तुलसी भी 'मानस' में यही स्वीकार करते हैं कि कर्मों के अनुसार ही फल प्राप्त होता है। जनम-मरण दुःख सुख, मिलन-वियोग सब कर्मों के वश में है। राम वन गमन के समय माता कौशल्या कहती है :—

काहु न कोउ सुखदुख कर दाता। निजकृत कर्म भोग सब भ्राता॥
सुभ असुभ करम अनुसारी। ईस देइ फल हृदय बिचारी॥[3]
करे जो करम पाव फल सोई। निगम नीति अति कह सबु कोई॥[4]

अवतारवाद :—

अवतारवाद का निरूपण हिन्दू ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर मिलता है। हमारी ऐसी विचारधारा है कि ईश्वर भक्तों के संकट निवारण करने के लिए संसार में अवतरित होता है।[1] इसी बात की पुष्टि तुलसी ने 'मानस' में की है कि जब-जब धर्म की हानि होती, दुष्टों का प्रभाव अधिक बढ़ता है तो राम भक्तों के सुख के लिए संकल्प का शरीर बना कर मनुष्य का रूप धारण करते हैं :—

---

१. श्री रामचरित मानस ७।११७। १, २, ३
२. ब्रह्मवैवर्त पुराण, कृष्णजन्म-खण्ड ८४
३. रामचरितमानस २।१२।२   ४. वही २।७७।४

"विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार।।"[२]

चरमसाध्य और प्राप्ति के विभिन्न साधन :—

भारतीय आध्यात्मिक जीवन का चरमसाध्य है—मोक्ष। हमारे यहां पारलौकिक अभ्युदय के लिए मोक्ष प्राप्ति अनिवार्य मानी जाती है। मोक्ष प्राप्ति के विभिन्न साधनों ज्ञान, कर्म और भक्ति में से तुलसी ने सर्वसाधारण के लिए भक्ति को ही अनिवार्य माना है। ज्ञान का मार्ग कठिन है इसलिए सरल साधना भक्ति ही अपेक्षित है जिसमें न योग करना पड़ता है, न जप, न तप केवल हृदय की सरलता और सात्विकता अनिवार्य है। राम ने भी "जाते वेगि द्रवऊ मैं भाई, सो मम भक्ति भक्त सुखदाई" कहकर भक्ति को ही उच्च माना है। मात्र 'राम नाम' के स्मरण से हो जब अनेक पाप दूर हो जाते हैं तो फिर ज्ञान की कृपाण-धारा से कष्ट सहने का क्या तात्पर्य। भक्ति के लिए आध्यात्मिक वातावरण और सत्संग का महत्व भी स्वीकार किया गया है। जनसाधारण की इस धारणाको तुलसी ने तीर्थराज प्रयाग, त्रिवेणी, रामेश्वरम् आदि विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य गाकर पुष्ट किया है।

दैवीशक्तियों में विश्वास :—

हिन्दू संस्कृति में अनेकानेक देवी-देवताओं की कल्पना की गई है। जनजीवन में इन्द्र, वरुण, रुद्र, वृहस्पति, ब्रह्मा, विष्णु आदि अनेक देवताओं की पूजा और अर्चना की जाती है। 'मानस' में जनजीवन की इस धारणा का हर जगह ध्यान रखा गया है। 'मानस' में अनेक देवताओं की उपस्थिति हर महत्त्वपूर्ण घटना और कार्यक्रम पर देखी जा सकती है। देवता लोग राम द्वारा धनुष तोड़ने के अवसर पर, राम विवाह के अवसर पर, रावण वध के समय पर, राम-भरत मिलाप के अवसर पर आकाश में पुष्पवृष्टि और हर्षध्वनि करते देखे जा सकते हैं। देवता लोग काम बिगाड़ने और सुधारने में पटु हैं—ऐसे विभिन्न आख्यान हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। 'मानस' में देवी-देवताओं के इन कार्यों

१. श्रीमद्भगवद्गीता ४।७।८ 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत युगे।'
२. रामचरितमानस १।१९२

शीराज

का उल्लेख करके तुलसी ने परम्परागत विचारधारा का समर्थन किया है। राम निर्वासन के समय राम के साथ वन जाने की इच्छुक अयोध्या की जनता को देवता लोग अपनी माया डाल रास्ते में ही गहरी नींद न सुलाते तो राम के लिए वन जाना भी कठिन हो जाता। इसी तरह चित्रकूट में समस्त अयोध्या निवासियों को अपनी माया से मोहित करके अविचल कर देना देवताओं का ही कार्य था। कैकेयी की दासी मन्थरा की बुद्धि को फेर देना भी देवताओं की ही कुचाल थी अन्यथा राम-निर्वासन जैसा महत्वपूर्ण प्रसंग रामकथा में न आ पाता। इसके अतिरिक्त इन्द्रपुत्र जयन्त का काकरूप में आना, नारद आगमन, इन्द्र द्वारा अपने सारथि मातलि को राम-रावण युद्ध में राम के लिए भेजना कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो देवतावाद के निरूपण में सहायक सिद्ध हुए हैं।

धर्म के लक्षणों का निर्वाह :—

हमारी संस्कृति में आध्यात्मिक चिंतनधारा की अखण्डता और उत्तमता के लिए सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, अक्रोध आदि धर्म के लक्षणों का उल्लेख किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक चेतना में धर्म यात्रा की वह सीढ़ी है जो उस परमसत्य तक पहुँचाती है। तुलसी ने भी 'मूल धर्म तरू' कह कर धर्म के मूल में भगवान को माना है। तुलसी के राम धर्म के साक्षात मूर्तिमान रूप हैं। उनमें सत्य, अहिंसा, धृति, दया, इन्द्रियनिग्रह आदि सभी गुणों का समाहार हो गया है। उनके जीवन की कोई ऐसी दिशा नहीं जो धर्म से प्रेरित न हो इन्हीं गुणों के कारण राम जन जीवन में पूज्य हैं और भारतीय जनता के लिए अनुकरणीय भी। उनकी धर्मोच्चता उनमें मर्यादा का समावेश करके उन्हें 'पुरुषोत्तम' विशेषण से विभूषित करती है। इस तरह धर्म के अखण्ड सूत्रों में बद्ध 'मानस' जनजीवन के हृदय में राम की तरह ही जीवन्त और शाश्वत बन गया है।

भौतिक पक्ष :—

अध्यात्म की छाया में पला हिन्दू संस्कृति का भौतिकपक्ष लौकिकजीवन क्रम और जीवन-पद्धति का स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करता है। तुलसी ने 'मानस' में जीवन-यापन के उन सभी तत्वों का समावेश किया है जिन का निरूपण हमारे समाज में किया जाता है।

वर्णव्यवस्था :—

हिन्दू संस्कृति में सम्पूर्ण समाज को योग्यता, कार्यक्षमता, आदि के अनुसार चार भागों में विभाजित किया गया है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। ब्राह्मण अपनी विद्या ज्ञान तथा विचार शक्ति के द्वारा समस्त जनता या समाज को सन्माग पर चलने का उपदेश देते हैं। ब्राह्मण इन्हीं गुणों के कारण हिन्दू समाज में पूज्य हैं। तुलसी ने भी गुणों से सम्पन्न ब्राह्मण का वचन प्रमाण मान कर, उसका रोष अनिष्ट का कारण और तोष मंगलमूल बताया है। ब्राह्मणत्व का आदर्श कुल पुरोहित वसिष्ठ में देखा जा सकता है। वह शिक्षा-दीक्षा, पारिवारिक-मांगलिक अनुष्ठानों के अगुआ हैं। वह कुल गुरू हैं और परिवार में पूज्य हैं तभी तो दशरथ परिवार का हर सदस्य उनके आगे नतमस्तक है। क्षत्रियत्व का आदर्श राम हैं। राम क्षत्रियत्व के प्रतीक हैं। उनका वीरत्व 'मानस' को ओज प्रदान करता है। यद्यपि चौदह वर्ष के लिए राम बनवासी थे परन्तु क्षत्रियत्व का चिन्ह धनुषबाण उन्होंने तपस्वीपन में भी धारण किये रखा। 'मानस' में वैश्यों के कर्मों का निरूपण विस्तृत रूप से नहीं हो सका प्रत्युत शूद्र जातियों का परिचय जंगल की कोल, किरात, भीलादि जातियों के प्रसंग में मिलता है। 'मानस' के गम्भीर अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तुलसी इस बात के समथक थे कि जातिविहित कर्मों के सम्यक् अनुष्ठान से प्रसन्नता और सन्तोष की प्राप्ति होती है यही कारण है कि रामराज्य में भय और शोक नहीं है क्योंकि लोग अपने-अपने धर्म और वर्णाश्रम में निरत हैं।

आश्रम व्यवस्था :—

हमारी संस्कृति में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चार आश्रमों में जीवन को बांट कर चतुः सूत्रीय आधार निश्चित किया गया है। तुलसी ने जीवन के इस सूत्र और क्रम को रामकथा लिखते समय अपने सामने रखा था। रामादि चारों भाइयों के प्रारम्भिक जीवन में ब्रह्मचर्य आश्रम के आदर्शों का निर्वाह हुआ है। गुरूगृह में विद्याध्ययन करना, तनमन की शुद्धता, प्रातःकाल उठना, स्नान, संध्या, वेदादि का श्रवण आदि क्रियाओं में ब्रह्मचर्य सम्बन्धी गुणों को निबन्धना करके इस आश्रम के धर्म का संकेतात्मक निरूपण हुआ है।

विद्याध्ययनोपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना शास्त्र का आदेश है।[1]

१. मनुस्मृति। ४।१

तुलसी ने शास्त्र के इस आदेश का पालन करने के लिए रामादि चारों भाईयों को यथासमय गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराया है। हमारे यहां गृहस्थाश्रम की उत्कृष्टता पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति कर्त्तव्यपरायणता में निहित है। 'मानस' आदर्श परिवार और गृहस्थाश्रम का दर्पण है। राम आदर्श पुत्र हैं। पितृत्व का आदर्श दशरथ में है। कौशल्या आदर्श माता हैं। भ्रातृत्व के सम्बन्धों का निर्वाह लक्ष्मण और भरत ने किया। सीता में भारतीय नारी और पत्नी का आदर्श साकार हुआ है। इस तरह भारतीय पारिवारिक जीवन का जो संयुक्त और आदर्श रूप 'मानस' में प्रस्तुत हुआ है वह हमारी वर्षों की सम्पदा है।

वानप्रस्थी और संन्यासियों से भेंट राम वनगमन के प्रसंग में होती है। ये लोग शास्त्रविहित कर्मों में निरत, सांसारिक आकर्षणों से दूर, सच्चिदानन्द ब्रह्म के ध्यान में निरत रहते हैं। अत्रि, बाल्मीकि, भारद्वाज आदि मुनि अपने अपने कार्यों में संलग्न रहकर संन्यास आश्रम का सफल निर्वाह करते दिखाए गए हैं।

सामाजिक रीति-रिवाज और संस्कार :—

हिन्दू संस्कृति में जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सोलह संस्कारों की योजना की गई है। 'मानस' में छः प्रमुख संस्कारों का निरूपण हुआ है। रामजन्मोत्सव के अवसर पर जातकर्म का विधान किया गया है। इस अवसर पर अयोध्या की नारियों का मंगलगीत गाना, शुभ बधावों का बजना, अनेकानेक वस्तुओं का निछावर किया जाना इन सब क्रियाओं में शास्त्रविदित विचारधारा ही निहित है। इसके बाद गुरु वसिष्ठ द्वारा रामादि चारों भाईयों का चूड़ाकरन, नामकरन, और यज्ञोपवीत संस्कार भी सम्पन्न कराए गए। विवाह संस्कार के जितने भी विधि-विधान हिन्दू समाज में प्रचलित हैं वह राम-विवाह के अवसर पर देखे जा सकते हैं। बारात की अगवानी, जनवासा, मण्डप की सजावट, चौक पूरना, परछन करना, पाणि-ग्रहण, भांवरें, वर द्वारा कन्या के सिर में सिंदूर देना, कन्यादान आदि सभी का विस्तृत विवेचन रामविवाह प्रसंग में मिलता है।[1]

जीवन का अन्तिम संस्कार है—अन्त्येष्टी संस्कार। 'मानस' में इस संस्कार का वर्णन दशरथ की मृत्यु के अवसर पर हुआ है। भरत द्वारा पिता का दाहकर्म तथा क्रियाकर्म वैदिक और लौकिक विधि-विधानों के अनुसार ही

---

१. रामचरितमानस, १।२८८।२-३-४

किया गया है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि तुलसी की यह कृति व्यापक लोक संस्कृति की भी प्रतीक है।

शकुन, अपशकुन :—

भारतीय जनजीवन में जिन शकुनों-अपशकुनों पर विश्वास किया जाता है वे सभी 'मानस' में वर्णित हैं। हमारे समाज में पुरुष का बायां अंग फड़कना अपशकुन और नारी के लिए शकुन माना जाता है, इसी तरह पुरुष के दायें अंग की फड़कन शकुन और नारी के लिए अपशकुन मानी गई है। इस का संकेत ननिहाल से लौटते हुए भरत के दायें अंगों की फड़कन में मिलता है। राम द्वारा चौदह वर्ष की अवधि के बाद अयोध्या पदार्पण की पूर्वसूचना भरत के दायें अंगों की फड़कन ने दे दी :—

भरत नयन भुज दच्छिन फरकन बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥[1]

इसी तरह सीता-हरण के समय उसके दायें अंगों की फड़कन अपशकुन की पूर्व सूचना दे रही थी और राम-रावण युद्ध के समय उसके बायें अंग फड़क-फड़क कर राम की विजय की पूर्व घोषना कर रहे थे।

यात्रा के समय होने वाले शकुन-अपशकुनों का निरूपण भी तुलसी ने किया है। यात्रा के समय दाहिनी ओर काग दिखाई देना, दाहिनी ओर हिरणों की टोलियों का आना, पानी लेकर औरतों और बच्चों का आगे आना शुभ शकुन हैं और यह सभी राम के बारात-गमन के समय देखे जा सकते हैं।[2] हमारे समाज में कुत्तों का रोना, उल्लूओं का बोलना, शृंगाल और गीध आदि का भयानक शब्द करना अनिष्ट के सूचक हैं। यह सभी अपशकुन रावण की मृत्यु के समय दिखाई देते हैं। इस तरह जन-जीवन की छोटी से छोटी धारणा और मान्यता को भी तुलसी ने ध्यान में रखा है।

वेशभूषा और भोजन पद्धति :—

खानपान और रहन सहन से भी किसी जाति की संस्कृति का पता

---

१. रामचरितमानस, ७।१
२. वही, १।३०३। १–२

चलता है। 'मानस' में वेशभूषा के सामाजिक और धार्मिक दो रूप मिलते हैं। सामाजिक वेशभूषा का चित्रण जनकपुर की जनता और रामादि के विभिन्न वस्त्रों में हुआ है। धार्मिक वेशभूषा का तौर तरीका मुनियों तथा ऋषियों के वस्त्रों से पता चलता है। हमारे समाज में पूजापाठ या अनुष्ठान पर पीलावस्त्र धारण करते हैं। राम ने विवाह के समय पीताम्बर धारण कर रखा है। पीली धोती के ऊपर कमर में दुपट्टा धारण किया हुआ है। नारी का सुन्दर पहनावा साड़ी है। सीता के विवाह के समय जनकपुर की स्त्रियों ने सुन्दर-सुन्दर साड़ियां धारण कर रखी हैं जिनके कारण उनका सौन्दर्य और भी निखर आया है विवाह मण्डप में सीता सुन्दर साड़ी धारण किए बैठी है जिससे उसकी छवि अतुलित और अनुपम हो गई है :—

चली संग लै सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बाणी॥
सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छवि भारी॥[1]

मुनि तथा ऋषि लोगों ने भी शास्त्रानुकूल वल्कल धारण किए हुए हैं। वस्त्रों के अतिरिक्त शारीरिक सौन्दर्य को अलंकृत करने के लिए 'मानस' में विभिन्न आभूषणों का भी उल्लेख हुआ है। राम ने कण्ठ में गज-मुक्ताओं तथा मणियों की माला, कानों में कर्णफूल और कुण्डल धारण कर रखे हैं। सीता ने कंकण, करधनी और पायजेब से शरीर को अलंकृत किया हुआ है। इन सारे आभूषणों द्वारा शरीर को सजाने संवारने का उल्लेख वैदिक युग से ही मिलता है। तात्पर्य यह कि तुलसी किसी भी भारतीय रीति-रिवाज को भूल नहीं सके हैं।

भोजन :—

हमारे शास्त्रग्रन्थों में चार प्रकार के भोजन (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय) और षट्रस व्यंजनों (मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल) का उल्लेख मिलता है। 'मानस' में राम की बारात-भोज के समय यह सभी पदार्थ परसे गए हैं। मांगलिक कृत्यों के लिए दही, दूब, सुपारी, पान, हल्दी आदि का प्रयोग भी किया जा रहा है। बनवासी लोगों का आहार कंद, फल, फूल आदि हैं। राम लक्ष्मण सहित इन सब को बड़ी रुचि से खाते हैं।

---

१. रामचरितमानस, १।२४८।१

राज धर्म :—

धर्म और समाज के बाद संस्कृति का मुख्य अंग है—राजनीति। समाज में अंकुश और अनुशासन के लिए राजा के पद का वरण किया गया है। हमारे शास्त्र ग्रंथों में राजा वरिष्ठ व्यक्तित्व वाला माना गया है। तुलसी ने भी 'मानस' में राजा को विशेष गरिमा प्रदान की है। उन्होंने राज्य के नियामक को जिस उच्चासन पर आसीन करने को चेष्टा की है उससे पता चलता है कि 'नराणाम् नराधिपं' की सत्ता को ही अपना अनुमोदन प्रदान किया है। राजा को 'ईस अंस भव परम कृपाला' कह कर शास्त्रानुसार उसमें दैवी अंश का समर्थन किया है। राजा साक्षात् ईश्वर का अंश है यह धारणा 'मानस' में पूर्णतया प्रतिफलित हुई है परिणामस्वरूप सामान्य जनता में उसके प्रति धर्मानुमोदित आज्ञाकारिता का भाव पनपा है। राजा को इस आसन पर आसीन करने के उपरान्त तुलसी ने उसको अपने कर्त्तव्यों के प्रति पूर्णतया सजग रखा है ताकि वह उच्छृङ्खलता से दूर रह कर जी सके। तुलसी के राम आदर्श राजा हैं। उन में वह सारे गुण विद्यमान हैं जो आदर्श शासक के लिए अनिवार्य होते हैं यही कारण है कि उनके राज्य में न रोग है, न शोक है। वह श्री, यश, धर्म आदि से पूरित है। दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से रहित है।[1] तुलसी ने तो यहां तक कहा है।—

रामनाथ जहं राजा सो पुर बरनि कि जाई।
अनिमादिक सुख सम्पदा रहो अवध सब छाई॥[2]

कलात्मक उपादान :—

कला संस्कृति का अभिन्न अंग है। 'मानस' में वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला और संगीत के सुन्दर नमूने विद्यमान हैं। अयोध्या और जनकपुरी के सुन्दर बाजार, विचित्र अम्बारियां, सुन्दर अटारियां, परकोटे और कंगूरे वास्तुकला के सुन्दर नमूने हैं। राजकीय उद्यानों और उपवनों के निर्माण में भी वास्तुकला का सुन्दर रूप प्रकट हुआ है :—

जात रूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गचढारीं॥
पुर चहुं पास कोट अति सुन्दर। रचे कंगूरा रंग रंग वर॥[3]

---

१. रामचरित मानस ७।४०
२. रामचरित मानस ७।२९
३. रामचरित मानस ७।२७।२

मूर्तिकला का सुन्दर नमूना राम-विवाह प्रसंग में मिलता है। बहुमूल्य रत्नों को तराश कर खम्भों में सुरप्रतिमाए बनाई गई हैं जो सजीव होने का भ्रम पैदा करता हैं। संगीतकला के दोनों पक्षों—गायन और वाद्य का वर्णन भी इस ग्रन्थ में मिलता है। गायन का स्वरूप राम विवाह पर गाए जाने वाले मांगलिक गीतों में निखरा है। मांगलिक अनुष्ठानों पर अनेकानेक वाद्ययन्त्र जैसे मृदंग, शंख, शहनाई बजते दिखाए गए हैं :—

झांझि मृदंग संख सहनाई। भेरी ढोल दुंदुभी सुनाई॥
बाजहि बहु बाजने सुहाए। जहं तहं जुबतिन्ह मंगल गाए॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू संस्कृति का कोई ऐसा पक्ष नहीं जो 'मानस' में न आया हो। क्या धर्म, क्या समाज, क्या राजनीति और क्या कला सभी पक्षों का समुचित समावेश इस ग्रन्थ में हुआ है। तुलसी ने तो हिन्दू संस्कृति की सभी मान्यताओं और विचारधाराओं का समस्त वैभव समेट कर 'मानस' में संगुंफित कर दिया है। यह ग्रन्थ अपने समूचे प्रयास को केन्द्रभूमि में सांस्कृतिक परम्परा की अक्षुण्णता और जीवन्तता के कारण ही जीवन्त और शाश्वत बन पाया है। यही कारण है कि 'मानस' अपने सजग अस्तित्व का परिचय आज तक दे रहा है और भविष्य में भी सर्वत्र द्युति और प्रकाश बिखेरता रहेगा।

———

१. रामचरितमानस १।३४४।१

तुलसी और केशव : नवीन निष्कर्ष

—डॉ० निज़ाम उद्दीन

तुलसी और केशव को जब एक ही तुला पर तोलने को हिन्दी मनीषियों ने संचेष्टा की तो अधिकांश ने पक्षाग्रह के कारण तुलसी का पलड़ा नीचे झुका दिया और केशव के साथ अन्याय कर बैठे। आलोचना-प्रवर्तक पं० रामचन्द्र शुक्ल ने सबसे अधिक अन्याय किया। उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'[१] में केशव के विपक्ष में फतवा देते हुए तीन बातों का उल्लेख किया :-- (१) सम्बन्ध निर्वाह की केशव में क्षमता न थी। (२) कथानक के मार्मिक स्थलों की ओर उनका ध्यान बहुत कम गया है। (३) दृश्यों की स्थानगत विशेषता (लोकल कलर) केशव की रचनाओं में ढूंढना तो व्यर्थ ही है। वे और आगे कहते हैं "प्रबन्ध काव्य रचना के योग्य न तो केशव में अनुभूति ही थी, न शक्ति ही।" इसी प्रकार आचार्य श्यामसुन्दर दास ने केशव में 'पांडित्य-प्रदर्शन' और 'चमत्कार-विधान' के ही दर्शन किये तथा भावुकता का उनमें अभाव माना है।[२] डॉ० शम्भूनाथ सिंह ने 'रामचन्द्रिका' की आलोचना करते हुये उसमें प्रबन्धत्व का अभाव, महत्व हीन चरित्र-चित्रण, भावाभिव्यंजना और प्रभावान्विति से एक असफल कृति माना है—उसे एक सफ़ल प्रबन्ध काव्य मानने में भी उन्हें आपत्ति है।[३] निःसंदेह इस प्रकार की धारणाएं और मान्यताएं शुक्ल-प्रणोदित

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २०२-२०३
२. हिन्दी साहित्य, पृ० २११
३. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ६७६-६८१

हैं, पक्ष-पंकिल हैं। ऐसा करने से तुलसी तो हिन्दी साहित्याकाश में भास्करवत् चमके और केशव का व्यक्तित्व-कृतित्व अवहेलित, तिरस्कृत होने के कारण पक्षाग्रह की कुहेलिका में प्रच्छन्न हो गया। यदि आचार्य शुक्ल उनकी समीक्षा तनिक सहृदयता से और निष्पक्ष होकर करते तो यह कहने का दुःसाहस कदापि न करते कि 'केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था।' या उनमें सहृदयता और भावुकता की कमी थी।

तुलसी और केशव दोनों के जीवन काल में कोई अधिक अन्तर नहीं है। तुलसी का जीवन काल सं. १५५४ से १६८० और केशव का सं. १६१२ से १६६७ है। दोनों ही भक्तिकालीन कवि हैं। दोनों ही रामकाव्य के प्रणेता हैं, दोनों ने मुक्तक और प्रबन्ध या महाकाव्य का प्रणयन किया है। भाषा पर दोनों कवियों का पूर्ण अधिकार है। फिर भी दोनों की परिस्थितियों में, व्यक्तित्व में और काव्य शैली आदि में भारी अन्तर है। दोनों के संस्कारों में वैभिन्य है। तुलसी भगवत्कैंकर्यपरायण कवि हैं, जो जीवनपर्यन्त राम-भक्ति के पावन प्रशस्त पथ का अनुगमन करते रहे। वह संस्कारतः भक्त, संत, महात्मा, साधु हैं। धर्म के क्षेत्र में उन्होंने समन्वयशील दृष्टि से काम लिया। उन्होंने मूर्ख-पंडित का, द्विज-चाण्डाल का, निर्गुण-सगुण का, द्वैत-अद्वैत का, शैव-वैष्णव का, ज्ञान-भक्ति का, राजा-प्रजा आदि का सामंजस्य प्रस्तुत कर महत्व पूर्ण कार्य किया। 'सियाराम मय सब जग जानी' के सिद्धान्त का पालन करने वाले बाबा तुलसी ने भगवद् भक्ति पर अत्यधिक बल दिया और काव्य में 'स्वांतः सुखाय' का आदर्श अंगीकार किया। रामचरित को सर्व सुलभ बनाने के लिए संस्कृत का मोह त्याग कर लोक प्रचलित भाषा में—अवधी में—काव्य सजन किया। वह स्वभाव से सात्विक वृत्तियों वाले व्यक्ति थे, इसीलिये उनके काव्य में भक्ति के साथ नैतिकता का आतिरेक्य है।

केशव दास संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। संस्कृत का अपार ज्ञान उन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में उपलब्ध था। उनके पिता पं० काशीनाथ ज्योतिषाचार्य थे।

मधुकर शाह के दरबार में उनका खूब आदर-सत्कार था केशव के बड़े भाई बलभद्र पुराणवेत्ता थे। केशव स्वभाव से रसिक थे। महाराजा इन्द्रजीत सिंह के दरबारी कवि थे और बड़े ही ठाठ-बाट से रहने वाले थे। तुलसी के समान वह त्यागी नहीं, भोगी थे। 'कविप्रिया' में महाराजा इन्द्रजीत सिंह

और 'जहांगीर जस चन्द्रिका' में जहांगीर बादशाह का स्तुति गान है। स्वयं दरबारी कवि होने के कारण केशव ने राम की शृंगारशाला और विलासिता का स्पष्टतः वर्णन किया है, ऐसा ही वर्णन रावण की विलास-वृत्ति का किया है। जैसे तुलसी ने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति, सभ्यता, स्वदेशानुराग और वीरत्व का अनुपम चित्रांकन किया है वैसे ही केशव ने 'रतन बावनी' और 'वीर सिंह देव चरित' में इनका सुन्दर वर्णन किया है। 'विज्ञान गीता में, अद्वैतवाद की झलक स्पष्ट है। इस प्रकार केशव अपने युग की धार्मिक चेतना से भी अवगत और प्रभावित थे।[1]' केशव तुलसी के समान ही धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे और केशव की चिन्तन-भूमि अद्वैतवाद को है।[2] तुलसी ने अपने साहित्य के द्वारा तद्युगीन समाज की विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन किया है, उसी प्रकार केशव ने भी तत्कालीन जाति भेद-भाव का, विलासिता का. मद्यपान का, व्यभिचार और विकृत मनोवृत्तियों का वर्णन किया है। 'विज्ञान-गीता' और 'राम चन्द्रिका' में भ्रष्टाचारोन्मुखी समाज की शोचनीय दशा के चित्र प्राप्य हैं।

तुलसी विनम्रता के अगाध सागर हैं, केशव गर्व और स्वाभिमान के। भक्त और कवि दोनों ही रूपों में तुलसी ने अपने को नम्रता की मूर्ति ही समझा है। इसके एकदम विपरीत केशव एक स्वाभिमानी, जात्यभिमानी विद्वान हैं।

वह एक निस्पृह ब्राह्मण, गम्भीर विचारक, काव्य शास्त्र में निष्णात, वाक्पटु, मनोविनोदी, व्यवहार कुशल व्यक्ति हैं जिनमें वाग्वैदग्ध्य का औत्कर्ष्य पूर्णतः विद्यमान है। तुलसी के सदृश केशव भी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। राजनीति, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र, दर्शनशास्त्र, संगीतशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र सभी में उनका पूरा दखल था लेकिन "जानत सकल जहान, सुजान, कवि सिरमौर" यह गर्वोक्ति केशव के मुख से ही निकल सकती है, अपने को कवियों का पिछलगुवा कहने वाले तुलसी के मुख से नहीं। विनोदी स्वभाव के होने के कारण वह अपने आपको पनघट की चन्द्रवदनी पनहारिन से 'बाबा' कहे जाने पर अपने श्वेत केशों को कोसना आरम्भ कर देते हैं, यह केशव के विनोदी स्वभाव को तो प्रकट करता ही है, साथ में उनके रसिक और भावुक होने का भी समीचीन दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं :—

---

१. केशव-सुधा—डॉ० विजयपाल सिंह, पृ० ११
२. केशव और उनका साहित्य—वही, पृ० ११६

केशव केसन अस करी, जस अरिहू न करहिं।
चन्द्रवदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कह जाहिं॥

केशव को पूर्णतः समझने में पं० जगन्नाथ तिवारी ने अद्भुत चिन्तन, मनन और विवेक से काम लेकर उपेक्षित महाकवि को वह उच्चासंदी प्रदान की जिसका वह असंदिग्धतः अधिकारी था। उन्हीं की प्रेरणा से डॉ० विजयपाल सिंह ने केशव पर शोधकार्य करके हिन्दी-जगत् में केशव को सहृदय, भावुक और महाकवि के रूप में प्रस्तुत किया तथा शुक्ल जी की पक्षपातपूर्ण मान्यताओं का सबलता और दृढ़ता से सप्रमाण खण्डन किया। इनके उपादेय अनुसन्धान ने केशव के अध्ययन को एक नई दिशा प्रदान की, शोधकों को नूतन मार्ग के अन्वेषण के लिये उत्प्रेरित किया। केशव के जन्मस्थान, जाति, काव्योत्कर्ष आदि पर उक्त विद्वानों ने मौलिक विचारों का प्रतिपादन किया है। पं० जगन्नाथ तिवारी ने अपनी 'संक्षिप्त रामचन्द्रिका' में केशव की सहृदयता अथवा भावुकता को सोदाहरण विश्लेषित किया है।

'भिन्न रुचिर्हि लोकः' के आधार पर प्रो० तिवारी का कथन पूर्णतः समीचीन प्रतीत होता है—"सब की रुचि एक ही समान नहीं होती और इसी कारण मार्मिकता की भी कोई विशेष कोटि नहीं हो सकती। जो स्थल एक व्यक्ति को अधिक मार्मिक प्रतीत होते हैं, दूसरे को उतने मार्मिक प्रतीत नहीं होते।..."[1] डॉ० विजयपाल सिंह ने केशव के जन्मस्थान एवं जाति आदि के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि बिहारी केशव दास के पुत्र थे।[2] डॉ० सिंह ने यह भी माना है कि 'केशव तुलसी के समान ही धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे और केशव की चिन्तन-भूमि भी अद्वैतवाद की है और तुलसी की अपेक्षा वह बहुत स्पष्ट है।[3] निःसन्देह केशव की कटु आलोचना का आधार संश्लिष्ट पदावली की दुरूहता, उनकी अति कलात्मक शैली और मार्मिक स्थलों को सर्वथा उपेक्षित समझना है। जो किसी भी प्रकार न्यायोचित एवं तर्कसंगत नहीं मानी जा सकती। और इसी के साथ जब तुलसी-केशव या 'मानस' और 'रामचन्द्रिका' के तुलनात्मक अध्ययन का प्रश्न आया तो पूर्वाग्रह के कारण केशव की अमान्य पराजय घोषित की गई। क्या केशव में भावुकता का अभाव है? क्या उनमें

---

१. संक्षिप्त रामचन्द्रिका (प्रस्तावना), पृ० १०
२. केशवसुधा, पृ० २५
३. केशव और उनका साहित्य, पृ० ११६

प्रबन्धत्व का कौशल नहीं, क्या वह एक महान् कवि नहीं ? यह प्रश्न तुलसी को सामने रखकर हल करने हैं।

भावुकता :—

मूर्धन्य आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल ने तो उन्हें 'हृदयहीन' माना है और यहां तक कहकर अपनी भड़ास निकाली कि उन्हें 'कवि हृदय' प्राप्त नहीं था। इस प्रकार तो शुक्ल जी उनके 'कवि' पर ही प्रश्नचिन्ह लगा देते हैं। संत शिरोमणि तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर भाव प्रवण, करुणाप्यायित, गलदश्रु भावुकतापूर्ण चित्र प्रस्तुत कर अपने को महान भावुक व्यक्ति एवं सफल कवि सिद्ध किया है। राजा दशरथ का पुत्र-शोक, राम-वन-गमन, वनमार्ग में ग्राम युवतियों की करुणासिक्त प्रेमपगी उक्तियां, सीता हरण, सीता का आर्तनाद, राम का वियोग में करुण क्रन्दन, लक्ष्मण के शक्ति लगना प्रभृति दृश्य किसे द्रवित न करेंगे। परन्तु इन स्थलों को जब हम केशव की दृष्टि से देखते हैं तो केशव की सहृदयता एवं भावुकता की दाद देनी पड़ती है और शुक्ल जी की आलोचना पर सन्देह होता है। यहां तुलसी के काव्य से उदाहरण इसलिये कम दिये जा रहे हैं क्योंकि वे चिर परिचित हैं। केशव ने राम-लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ जाने पर पिता दशरथ की वेदना का चित्र कुशलता और पूर्ण भावुकता के साथ अंकित किया है :—

राम चलन नृप के जुग लोचन। वारि भरत भए वारिद-रोचन ॥
पाइन परि रिषि के सजि मौनहिं। 'केशव' उठि गए भीतर भौनहिं ॥[1]

यहां करुणा का अतिरेक्य दशरथ की वाणी अवरुद्ध कर देता है, सजल नेत्रों के कारण दृष्टि धूमिल पड़ जाती है और बस मुनिवर को प्रणाम कर अन्दर चले जाते हैं। लेकिन तुलसी दास ने इस स्थल का कोई प्रभावशाली चित्रांकन नहीं किया। सीता हरण के प्रसंग को दोनों कवियों ने चित्रित किया है। अपहृत सीता से तुलसी इतना ही कहलाते है :—हे अप्रतिम वीर रघुनाथ आपने कैसे मुझ पर दया भुला दी। पश्चाताप करती लक्ष्मण को नहीं अपने को दोषित करती हैं। परन्तु केशव का सीता अधिक करुणार्द्र रूप में क्रन्दन करती दृष्टि-गत होती है :—

---

१. राम-चन्द्रिका, २।२७

हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर। लंकाधिनाथ बस जानहु मोहि वीर ॥
हा पुत्र लक्ष्मण छुड़ावहु वेगि मोहि। मार्तण्ड बंस जस की सब लाज तोहि ॥[1]

सीता-हरण पर राम का अति क्रन्दन भी केशव ने तुलसी सदृश प्रभावोत्पादक रूप में चित्रित किया है—तुलसी के राम विरहाधिक्य में जड़ चेतन का भेद विस्मृत कर लता-वृक्ष, पशु-पक्षी सभी से सीता का पता पूछते हैं:—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥

परन्तु यहां भी केशव ने राम की बिरह-वेदना अधिक मर्मस्पर्शी रूप में अभिव्यंजित की है। जब राम को अशोक, चंपक आदि हर्षमग्न दीखते हैं तो 'करुणा' की भीख मांगते हैं: —

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाव ते तीक्षण जाति तजे डरिकै।
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोध कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करिकै।[2]

अन्तिम पंक्ति में तो जैसे राम की करुणा ही मूर्तिमान हो गयी है। लक्ष्मण के शक्ति लगने के प्रसंग पर किंचितमात्र दृष्टिनिक्षेप कर लेना भी समीचीन होगा। अपने सहोदर को मूर्छित देख राम का हृदय टूट जाता है, साधारण मनुष्य की भांति वह विलाप करते हैं कि तुमने मेरे लिये सब कुछ त्यक्त किया, मैं तुम्हारी मां को कैसे मुंह दिखाऊंगा, जगत् की बदनामी कैसे सहन करूंगा, स्त्री की हानि से कोई बात नहीं होती पुत्र, धन सभी संसार में मिल सकते हैं लेकिन 'मिलइ न जगत सहोदर भ्राता' तुम्हारे बिना मेरी दशा बिना पंख के पक्षी सदृश है। केशव के राम का विलाप इसलिये है कि अब प्रण-पालन न हो सकेगा, कुल मर्यादा की रक्षा न हो सकेगी सजल नेत्रों से राम अचेत लक्ष्मण को उद्बुद्ध करते कहते हैं:—

लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो।
बारक लक्ष्मण मोहिं बिलोको। मो कहं प्राण चलै तजि रोको।

---

१. राम-चन्द्रिका, १२।१६
२. रामचन्द्रिका, १२।३६

हों सुमिरँ गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे।
लोचन बाहु तुम्हीं धनु मेरो। तू बल विक्रम बारक हेरो।
तू बिन हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं कछु भूठ न भाखौं।[1]

केशव बहुत ही चिन्तन शील व्यक्ति थे, मनोविज्ञान के विद्वान थे, अतः उनमें मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना शक्ति का आधिक्य हे उक्त वर्णन में इसी आधार पर राम के विलाप का चित्रण किया गया है।

प्रकृति-चित्रण :—

प्रकृति-निरूपण दोनों कवियों ने सुन्दर रूप में किया है और उनको नाना रूपों में अंकित कर अपवे प्रकृति अनुराग की सुरम्य झांकियां प्रस्तुत की हैं। यों आलोचकों ने यहां भा केशव के साथ खुलकर अन्याय किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो केशव से 'प्राकृतिक दृश्यों के सच्चे वर्णन की आशा' ही नहीं की और डॉ० श्याम सुन्दर दास ने प्रकृति के अतुलित सौंदर्य से प्रभावित होने के लिये जिस भावुकता की आवश्यकता होती है, उसका केशव में सर्वथा अभाव माना है।[2] परन्तु डॉ० विजयपाल सिंह के कथनानुसार केशव ने प्रकृति चित्रण की प्रायः सभी शैलियों का वर्णन किया है। प्रकृति का यथातथ्य और सुन्दर चित्रण करने की उनमें क्षमता थी। वे चाहते तो प्रकृति का स्वच्छन्द व स्वाभाविक चित्रण कर प्रकृति-कवि के रूप में प्रसिद्ध हो सकते थे वैभव और विलास के वातावरण में रहने के कारण उनकी मनोवृत्ति कला पक्ष की ओर विशेष रही। संस्कृत साहित्य के अति सम्पर्क के कारण उनकी दृष्टि बहुत कुछ बद्ध रही।……उनमें हृदय की अपेक्षा बुद्धि का प्राधान्य हो गया। …उन्होंने प्रकृति को कवि की दृष्टि से नहीं, अपितु कवि सम्प्रदाय की दृष्टि से देखा है।"[3] निःसन्देह यदि केशव ने अपना पांडित्य प्रदर्शित न किया होता तो प्रकृति चित्रण में वे तुलसी से बहुत आगे-भवभूति और कालिदास के सदृश प्रशंसा अर्जित करते। तुलसी ने अपने काव्य में षड्-ऋतुओं के अतिरिक्त वन, पर्वत, सर, सरिता, संध्या, उषा, वाटिका, चन्द्र, नक्षत्र आदि का रमणीय वर्णन किया है। एक सन्त कवि होने के नाते उन्होंने प्रकृति को उपदेशात्मक योजना की है यथा पावस-वर्णन में

---

१. रामचन्द्रिका, १७।४४–४६
२. हिन्दी साहित्य, पृ० २५५
३. केशव सुधा– डॉ० विजय पाल सिंह, पृ० ७५

"दामिनि दमक रही घन माहीं, खल की प्रीति यथा थिर नाहीं" और "बुंद अघात सहहिं गिरी कैसे, खल के वचन सन्त सह जैसे।" इसी प्रकार केशव ने जीवन के सत्यों को प्रकृति चित्रण द्वारा प्रस्तुत किया है। जैसे सुरापान करने से ब्राह्मण निष्प्रभ. कान्तिहीन हो जाता है उसी प्रकार वारुणी की इच्छा करने से चन्द्रमा कान्तिहीन हो जाता है :—

जहीं बारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिन संपति सोभा साज ॥[1]

वर्षा का चित्र खींचते हुए केशव कहते हैं :—

देख राम वर्षा रितु आई। रोम रोम बहुधा दुख दाई॥
आस पास तम की छवि छाई। रति द्यौस कछु जानि न जाई॥
मंद मंद धुनि सों घन गाजें। तूर तार जनु आवझ बाजें॥
ठौर ठौर चपला चमकें यों। इन्द्रलोक तिय नाचति है ज्यों॥[2]

तुलसी ने सीता के मुख की समता चन्द्रमा से करते हुए 'अवगुण बहुत चन्द्रमा तोहिं' कह कर सीता के मुख अर्थात् उपमेय का उत्कर्ष और उपमान --चन्द्रमा का अपकर्ष प्रदर्शित किया है। केशव ने भी इसी प्रकार सीता के मुख का उत्कर्ष प्रदर्शित किया है :—

एक कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,
एक कहैं चन्द्र सम आनन्द को कन्द री।
होइ जौ कमल तौ रयनि मैं न सकुचै री,
चन्द्र जौ तौ बासर न होइ दुति मंद री।
बासर ही कमल रजनि ही में चन्द,
मुख बासर हू रजनि विराजै जगवंद री॥[3]

शरद को केशव ने मानवीकरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे एक वृद्धा दासी बताया है :—

---

१. राम चन्द्रिका, ५।१४
२. राम चन्द्रिका, १३।११
३. राम चन्द्रिका, ६।४२

लक्ष्मण दासी वृद्ध सी आई सरद सुजाति।
मानहु जगावन को हमहिं बीते बरषा राति॥[1]

विश्वामित्र के आश्रम का वर्णन राजा जनक की वाटिका के समान ही प्रतीत होता है। यह एक 'विचित्र बन' है तभी तो कवि ने यहां एला और लवंग आदि की उपज दिखाई है। इस प्रकार केशव का प्राकृतिक अनुराग, उसकी अभिव्यंजना स्वाभाविक और सरस है।

हाकाव्यत्व :—

केशव और तुलसी दोनों प्रबन्धकार और महाकाव्यकार हैं। तुलसी की जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, रामचरितमानस प्रबन्धात्मक रचनाएं हैं। केशव की रतन बावनी, वीर सिंह देव चरित, जहांगीर जस चन्द्रिका प्रबन्ध काव्य हैं। दोनों की अन्तिम दोनों रचनाओं को महाकाव्य का अभिधान प्राप्त है। 'मानस' के महाकाव्यत्व पर कोई विवाद नहीं, उसमें लगभग महाकाव्य के सभी लक्षणों का सन्निर्वाह किया गया है। यहां सर्ग के स्थान पर 'काण्ड' का प्रयोग है, वैसे परम्परानुमोदित लक्षणों के आधार पर कम से कम आठ सर्ग या काण्ड होने चाहिये थे, परन्तु तुलसी ने सात काण्ड ही रखे हैं। केशव की राम चन्द्रिका में भी सर्ग नहीं 'प्रकाश' नाम दिया गया है यहां ३९ प्रकाश हैं। 'मानस' का प्रारम्भ बालकाण्ड-गुरु आदि के स्तवन के उपरान्त राम-जन्म से होता है, जब कि राम चन्द्रिका का विश्वामित्र के अयोध्या गमन से प्रारम्भ होता है। तुलसी ने सीता निर्वासन का प्रसंग परित्यक्त किया है, केशव ने इसका वर्णन ३३ वें प्रकाश से ३९ वें प्रकाश तक किया है। यह उल्लेखनीय है कि केशव ने उन प्रसंगों को अधिक विस्तृत रूप में वर्णित किया है जो 'मानस' या अन्य राम काव्यों में नहीं मिलते। डॉ० विजयपाल सिंह के कथनानुसार "केशव की प्रबन्ध दृष्टि तुलसी से भिन्न है। तुलसी ने पुराण शैली का अनुकरण करते हुए रामकथा को 'भाषा' में उतारा है। केशव की दृष्टि में कालिदासोत्तर संस्कृत की महाकाव्य परम्परा है। उन्होंने सम्भवतः 'किरातार्जुनीय', 'शिशुपाल वध', एवं 'नैषध-चरित' जैसे वर्णन-बहुल-चमत्कार पूर्ण महाकाव्यों को ध्यान में रखा।"[2] आचार्य शुक्ल ने

---

१. राम चन्द्रिका, २३।२६
२. केशव-सुधा, पृ० ६३

"राम चन्द्रिका' में सम्बन्ध-निर्वाह का अभाव, कथानक को विशृंखलित मानकर आपत्ति उठाई है। केशव को राम का वैभव, उनका राजसी ठाट-बाट, उनका ऐश्वर्य बर्णित करना ही अभीष्ट था, इसलिये कहीं कहीं वस्तु वर्णन का विस्तार तथा संवादों का दीर्घ होना देखने को मिलता है, परन्तु इनमे कथानक में शैथिल्य नहीं आया है, सजीव और फड़कते संवाद राम चन्द्रिका का वैभव हैं। कथानक को नियोजित करने के लिये केशव को संस्कृत राम काव्यों से पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई और अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा परम्परानुमोदित कथानक में नूतन उद्भावनाओं का अभिनिवेशन किया, यह उनकी नवनवोन्मेषिणी कल्पना-शक्ति का परिचायक है।

केशव ने अपने पात्रों के चारित्रिक गुणों का भी क्रमिक विकास प्रदर्शित कर अपनी दक्षता का परिचय दिया है। उन्होंने राम के अलौकिक रूप की रक्षा करते हुए उसे परब्रह्म और अवतारमणि माना है, परन्तु मानस को अपेक्षा यहां इनका परब्रह्म रूप कम विकसित हुआ है। केशव के राम मानवीय अधिक हैं। तुलसी के राम में परशुराम के समक्ष उतनी उत्तेजना और उग्रता प्रकट नहीं होती जितनी केशव के राम में। केशव के राम की दर्पोक्ति देखिये वह परशुराम को ललकारते हैं:—"भृगुनन्द संभारु कुठार मैं कियो सरासन जुक्त सर।' तुलसी के राम भले ही भरत पर किंचितमात्र सन्देह न करें लेकिन केशव के राम राज-पाट त्यागते समय शंकालु हृदय से लक्ष्मण को अयोध्या ठहरने, भरत की गतिविधियों को परखने के लिये इसलिए कहते हैं कि वह एक राजा हैं, राज-नीति के दाव समझते हैं। केशव ने तुलसी से अलग हट कर राम को श्रृंगारी मनोवृत्तियों का भी चित्रण किया है।

केशव के भरत चित्रकूट पर अपने स्वर्गीय पिता की निन्दा करने में कुछ आगा-पीछा नहीं देखते और राम की भी सीता के परित्याग को लेकर निन्दा करते हैं, वह अपने हृदयस्थ आक्रोश को छिपाते नहीं, प्रकट करते हैं। इसलिए 'तुलसी के भरत से भी अधिक स्वतन्त्र और तेजवान व्यक्तित्व केशव के भरत का है।' लक्ष्मण में सेवक के आदर्श रूप की रक्षा की गयी है। भरत के चित्र-कूट आने पर तुलसी के लक्ष्मण के समान केशव के लक्ष्मण भी उत्तेजित हो उठते हैं। उन्होंने अग्रज की मान-मर्यादा की सदैव रक्षा की। केशव को नारी-चित्रण में अधिक साफल्य प्राप्त नहीं हुआ। वह सीता के साथ भी ठीक न्याय नहीं कर पाये। तुलसी के समान उन्होंने अपने स्त्री पात्रों का मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण नहीं किया।

केशव ने सभी रसों का भाव पूर्ण वर्णन किया है। अन्य आचार्यों के समान ही उन्हों ने भी श्रृंगार को रसराज माना है। श्रृंगार के वर्णन में उन्हों ने तुलसी से अधिक सफलता प्राप्त की है, परन्तु मर्यादा का सर्वत्र ध्यान रखा है। भ्रमरों को मालती को चुम्बन करते देख रनिवास की सुन्दरियां कैसे लज्जित हो जाती हैं, केशव के शब्दों में देखिये :—

अलि उड़ धरत मंजरी जाल, देखि लाज साजति सब बाल।।
अलि अलिनि के देखत धाइ, चुम्बत चतुर मालती जाई।।
अद्‌भुत गति सुन्दरि बिलोकि, विहंसित हैं घूंघट पट रोको।।

अपहृता सीता का क्रन्दन करुण रस का धारा प्रवाहित करता है, युद्ध-वर्णन में वीर, रौद्र रसों का परिपाक हुआ है। भयानक, वोभत्स हास्य, शान्त आदि सभी रसों की अभिव्यंजना केशव के काव्य में दृष्टव्य है।

आचार्यत्व :—

आचार्यत्व वह पक्ष है जिसके आधार पर केशव तुलसी से बहुत आगे पहुंच गये हैं आचार्य का काम कवि के लिये नियम निर्धारित करना है। संस्कृत काव्य शास्त्र में काव्य के लिये रस, छन्द, रीति आदि का बहुत विशद वर्णन मिलता है और संस्कृत आचार्यों की भी एक सुदीर्घ परम्परा प्राप्त है। केशव ने 'कविप्रिया' और 'रसिक प्रिया' दोनों ग्रन्थों की रचना कर आचार्यत्व प्राप्त किया। केशव सम्प्रदाय की दृष्टि से यदि अलंकारवादो हैं तो इस दृष्टि से श्रृंगार-वादी है। "केशव का महत्व संस्कृत के आधार पर हिन्दी में काव्य शास्त्र के विषयों पर लक्षण-उदाहरण-पूर्ण ग्रन्थ लिखने की परम्परा डालने में है।"[१] इस प्रकार यदि हिन्दी में किसी को प्रथम आचार्य माना जाय तो वह केशव हैं। उन्हों ने लक्ष्मण-निरूपण में 'दोहा' प्रयुक्त किया है और उदाहरण दिये हैं कवित्त, सवैया आदि छन्दों में। तुलसी ने न तो कोई ऐसा ग्रन्थ ही लिखा है और न इस प्रकार की रीति अपने काव्य में अपनायी है। अतः केशव आचार्यत्व की दृष्टि से हिन्दी के सभी कवियों में शिरोमणि हैं।

---

१. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डॉ० भागीरथ मिश्र, पृ० ५०

कलापक्ष में केशव तुलसी से बाजी मार ले जाते हैं। तुलसी के यहां पद, दोहा, चौपाई आदि कुछेक छन्दों का अवश्य ही सुष्ठु प्रयोग है, परन्तु छन्दों में जो वैविध्य एवं अभिनवता केशव काव्य में दृष्टिगत होती है वह तुलसी के यहां कहां ? केशव ने तो कलावाद का पुनरुत्थान किया, अलंकारवाद को पुनः नव-जीवन प्रदान किया। 'सुगीत', 'मन हरन', 'मनोरमा', 'कमल' नामक नवीन छन्दों के अविष्कर्ता केशब हैं। अतुकान्त छन्दों में भी उनकी मौलिकता दृष्टिगत होती है। घोड़े की गति को मूर्तिमान करने से लिए उन्होंने 'चंचला' नामक नये छन्द को जन्म दिया जहां क्रमानुसार आठ बार गुरु-लघु प्रयुक्त होते हैं।[1] केशव ने अलंकार को काव्य के लिये अनिवार्य माना है—"भूषन बिनु न विराजहीं कविता वनिता मित्त।" उनकी इस अपरिमित अलंकारप्रियता को देख कर उन्हें चमत्कारवादी मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं। तुलसी ने अलंकारों का खूब प्रयोग किया है परन्तु चमत्कार वादी वे नहीं, उनकी अलंकार योजना भावानुरूप और अयत्नज है, जबकि केशव की अलंकार योजना यत्नज है, अतः कहीं कहीं अस्वाभाविकता खटकती है। 'रामचन्द्रिका' या 'वीर सिंह देव चरित' में वह अलंकार वैचित्र्य पग पग पर प्रदर्शित करने का लोभ संवरण नहीं कर सके। रूपक और श्लेष में तो दुरूहता भी आ गयी है। तुलसी ने नूतन कल्पनाभि-मण्डित, भावोद्रेककारी अलंकारों का प्रयोग किया है जैसे राम-लक्ष्मण के सौन्दर्य के लिये "स्याम गौर किमि कहौं बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।" और सीता के अनुपम लावण्य के लिए "छवि गृह दीपसिखा जनु बरई।" इसी प्रकार केशव के यहां भी अद्भुत कल्पना जनित अलंकार दृष्टव्य हैं। दर्पण निहारती सुन्दरी ऐसी कल्पित की गई है जैसे चन्द्रिका रविमण्डल में समा गयी हो :—

कबहुं मुख देखति दर्पन लै. उपमा मुख की सुखमा परसै।
जनु आनंद कंद सु पूरन चंद, दुरयो रवि मंडल में दरसै॥

श्यामल मेघों में उड़ती बगुलावलि ऐसी प्रतीत होती है मानो मेघ अपने साथ समुद्र से लाये शंख उगल रहे हैं। दशरथ के भव्य प्रसादों की ध्वजाओं, सीता की अग्नि परीक्षा आदि वर्णनों में अलंकार योजना उनके पाण्डित्य से कुछ दब सी गई है, उसमें वह प्रवाहमय सौन्दर्य नहीं जो तुलसी के यहां अनायास प्राप्य है।

---

१. राम चन्द्रिका, ३१।७

संवाद सौष्ठव में अवश्य केशव को तुलसी की अपेक्षा अधिक साफल्य प्राप्त हुआ है। यह ठीक है कि तुलसी के संवाद भावानुरूप तथा प्रभावशाली हैं परन्तु संवादों में जो नाटकीय कौशल और व्यंग्योक्तियों का चुभता-हृदय को भीतर ही भीतर कचोटता रूप होता है वह केशव के यहां ही अधिक अवदात्त और समुन्नत है। केशव ने अपने उन्हीं पात्रों को बोलने का अधिक अवसर दिया है जिन्हें व्यंग्य से बातें कहने तथा कूटनीति के दांव-पेच खेलने की अधिक आवश्यकता थी।"[1] संवादों की दृष्टि से केशव 'हनुमन्नाटक' और 'प्रसन्न राघव' के अधिक ऋणी हैं। केशव ने अपने संवादों में कोमल भावों की अपेक्षा कठोर भावों शौर्य, रौद्र या राजनीतिक भावों की अधिक व्यंजना की है, इस के विपरीत तुलसी ने भावात्मक स्थलों का संवादों के लिए चयन किया है फिर भी तुलसी के संवाद इतने लोकप्रिय नहीं, जितने केशव के। हम देखते हैं कि राम लीला के अवसर पर चौपाई या दोहे कथानक के आधार पर तुलसी के लिये जाते हैं, परन्तु संवाद केशव के ही होते हैं। संवादों में जो तीखा व्यंग्य और वाग्विदग्धता केशव के यहां सहजतः प्राप्य है वह तुलसी क्या हिन्दी के किसी कवि में प्राप्य नहीं। हनुमान-रावण संवाद का तुलसी ने भी वर्णन किया है।[1] परन्तु जो वाक्पटुता, वाग्वैदग्ध व्यंग्य, कटूक्ति नाटकीयता केशव के हनुमान-रावण संवाद में दृष्टिगत होती है वह तुलसी के यहां कहां :—

> रे कपि कौन तू ? अक्ष को घातक, दूत बली रघुनंदन जू को।
> को रघुनंदन रे ? त्रिसिर-खर-दूषन दूषन भूषन भूषन भू को।।[2]

संवादों के आधार पर तुलसी और केशव के पात्रों के मनो भावों में भी काफी अन्तर आ गया है। तुलसी के हनुमान उक्त प्रसंग में निम्नस्तरीय शब्दों का प्रयोग करते हैं, परन्तु केशव के हनुमान राज-सभा की मर्यादा का पालन करते हैं। इसी प्रकार तुलसी के लक्ष्मण आवश्यकता से अधिक उग्र, उत्तेजित होकर परशुराम के प्रति अति असंयत, अशोभनीय बातें कहते हैं, केशव के लक्ष्मण राम के सदृश संयम से काम लेकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं।

केशव के समय काव्य-क्षेत्र में व्रज और अवधी दोनों भाषाएं प्रतिष्ठित थीं। तुलसी ने अवधी और व्रज दोनों को अपनाया, परन्तु केशव ने केवल परिनिष्ठित ब्रज को, जिसमें बुंदेली का पुट भी है, अपनाया। इस प्रकार निःसन्देह

---

१. रामचरित मानस—सुन्दर काण्ड, २१
२. राम चन्द्रिका, १४।२

तुलसी को दो भाषाओं पर समान और पूर्ण अधिकार प्राप्त था। अवधी की महानता, उत्कृष्टता तो 'मानस' की लोकप्रियता से ही सर्वविदित है। ब्रज भाषा में उन्होंने 'विनय पत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली' की रचना की। जैसे तुलसी ने अवधी में संस्कृत तथा अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है उसी प्रकार केशव ने ब्रज भाषा में संस्कृत, बुन्देली और अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है, तुलसी ने पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के शब्दों को भी प्रयुक्त किया है। जैसे तुलसी ने गरूर, जहान, गनी, गरीब निवाज़, सबील आदि अरबी-फारसी शब्द स्वीकार किये हैं, वैसे ही केशव ने लायक, तसलीम, गुलाम, फरमान आदि शब्द अपनाए हैं। मुहावरे और लोकोक्तियां दोनों की भाषा में दृष्टिगत होते हैं। तुलसी की भाषा में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का प्राधान्य है, केशव ने लक्षणा, व्यंजना का अधिक प्रयोग संवादों में किया है। दोनों की भाषा में रसोत्कर्ष के लिए माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों की स्थिति विराजमान है। केशव की भाषा में च्युत संस्कृति दोष (पीछे मघवा मोहि साप दई) अश्लीलत्व दोष (दिगपालन की भुवपालन को किन मातु गई च्वै), अक्रमत्व दोष (अमानुषी भूमि अबानरी करूं) और अधिक पदत्व आदि दोष केशव की भाषा में परिलक्षित होते हैं, तुलसी के यहां इस प्रकार दोषों का बाहुल्य नहीं है।

निष्कर्षतः तुलसी भक्त और दार्शनिक के रूप में केशव से बहुत महान है, केशव के यहां भक्ति भावना गूलर का फूल है, दर्शन में भी उनकी तुलसी के समान गहनता, विशदता प्रतीत नहीं होती। लोकप्रियता भी तुलसी को अपरिमित प्राप्त हुई। भाषा की दुरूहता और जटिलता जो केशव को समझने में बाधक बनी, वहां भाषा की सरसता, सुबोधता ही तुलसी के काव्य को चार चांद लगाने में समर्थ हुई। इस प्रकार निर्विवाद रूप से तुलसी हिन्दी का गौरव है, परन्तु केशव के काव्य की पूर्वाग्रह के कारण निन्दा करना किसी भी प्रकार स्वीकार्य नहीं। वह एक महान कवि है, सफल प्रबन्धकार और महाकाव्यकार है। भाषा पर, परिनिष्ठित भाषा पर, संस्कृत भाषा और साहित्य पर उनका अपूर्व अधिकार है। आचार्यत्व का जो अप्रतिम रूप केशव में परिलक्षित होता है वह तुलसी क्या, हिन्दी के किसी कवि में भी परिलक्षित नहीं होता। लोकनायक, लोकरक्षक. (और लोकरंजक भी) के रूप में जो महान गौरव, प्रतिष्ठा, अक्षुण्ण यश तुलसी अर्जित कर सके हैं वह केशव के भाग्य में नहीं और जो काव्य शास्त्र का पाण्डित्य केशव में संलक्षित होता है वह तुलसी में कहां ?

प्रकाशराम कृत रामायण और तुलसी

—चमनलाल सपरू

कश्मीरी साहित्य में राम-काव्य अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा कम मात्रा में उपलब्ध है। १८वीं शताब्दी से पूर्व रामाख्यान सम्बन्धी कोई रचना कश्मीरी भाषा में उपलब्ध नहीं। कश्मीर में शैवमत का प्राधान्य होने के कारण अधिकतर शैवमत सम्बन्धी कृतियों की ही रचना होती रही। कश्मीरी साहित्य का आदि-काल 'लल्लेश्वरी' के 'वाखों' और नुन्द ऋषि (शेख नूर-उद्-दीन) के 'श्रुखों' से प्रारम्भ हुआ। लल्लेश्वरी पर शैव मत एवं नुन्द ऋषि पर सूफी मत का प्रभाव स्पष्ट है।

बडशाह (१४२० ई० से १४७० ई० तक) के शासन काल में भारत से अनेक ब्राह्मण कश्मीर आये और उन्होंने ही यहां वैष्णव मत का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त महाराजा गुलाब सिंह (१८४६ ई० से १८५७ ई० तक) के द्वारा कश्मीर को वर्तमान जम्मू-कश्मीर रियासत का अंग बनाये जाने के उपरान्त यहां वैष्णव पद्धति का अधिकाधिक प्रचार प्रसार हुआ। भगवान राम डोगरा शासकों के इष्ट देव थे अतः कश्मीर में अनेक स्थानों पर रघुनाथ जी के मन्दिरों का निर्माण हुआ और इस प्रकार रामभक्ति का प्रचार हुआ। यही कारण है कि १८वीं शती के उपरान्त ही कश्मीर में 'राम-काव्य' की रचना हुई।

कश्मीरी भाषा में इस समय निम्नलिखित राम-कथा काव्य उपलब्ध हैं[1] :—

---

१. शोध प्रबन्ध : डॉ० ओमकार नाथ कौल।

१. **प्रकाश रामायण**—इसके लेखक पं० प्रकाश राम कुर्यगामी हैं। इसका रचना काल १९०४ विक्रमी है।[1]

२. **शंकर रामायण**—इसके लेखक पं० शंकर कौल हैं और रिसर्च लाईब्रेरी श्रीनगर में सुरक्षित इसकी पाण्डुलिपि पर सप्तऋषि संवत् ४९४५ दिया हुआ है जो ई० सन् १८७० के बराबर है।

३. **आनन्द रामावतार चरित**—इसके लेखक पं० आनन्द राम राज़दान हैं। इसका रचना काल १८८० ई० के लगभग है।

४. **विष्णुप्रताप रामायण**—इसके रचयिता पं० विष्णु कौल हैं और इसकी रचना सन् १९१३ ई० में हुई है।

५. **श्रीमद्रामायण-इ-शर्मा**—इसके रचयिता पं० नीलकंठ शर्मा हैं। इसकी रचना कवि ने सन् १९१९ से लेकर १९२६ ई० तक की।

६. **ताराचन्द रामायण**—इसके रचयिता पं० ताराचन्द ने इसकी रचना ई० सन् १९२६ में की है।

७. **अमर रामायण**—पं० अमर नाथ 'अमर' ने इसकी रचना १९४० में की है।

इसके अतिरिक्त अनेक कश्मीरी भक्त कवियों ने फुटकर राम भजन (क० 'लीलायें') लिखे हैं। यह अधिकांश श्रीराम के प्रति विनय के पद ही हैं, जो गीति शैली में हैं और इनमें राम कथा का वर्णन नहीं। इन कवियों में श्री लक्ष्मण जु 'बुलबुल' का नाम उल्लेखनीय है। इनकी प्रसिद्ध कृति श्री राम गीता है।

उपर्युक्त कृतियों में "प्रकाश रामायण" तुलसी के "रामचरित मानस" की ही भांति अधिक लोकप्रिय है और इसके कई सस्करण प्रकाशित हुए हैं। अन्य राम काव्य अप्रकाशित हैं। इनकी पाण्डुलिपियां लेखकों के वंशजों, भक्तों अथवा रिसर्चविभाग कश्मीर सरकार के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। प्रकाश राम

---

१. डॉ० बलजिन्नाथ पंडित—'काशुर रामायण'—पृ० २९

के 'रामायण' का सर्वाधिक लोकप्रिय होने का प्रधान कारण है इस काव्य की सरस शैली एवं करुण रस का प्राधान्य। कश्मीर के गांव गांव में उक्त रामायण हिन्दू परिवारों में तुलसी रामायण की भांति पढ़ा ओर सुना जाता है।

"प्रकाश राम ने भी तुलसी ही की भांति आध्यात्म रामायण के आधार पर रामायण की रचना की है। इसने श्रीराम को भगवान नारायण का अवतार माना है और सारा रामचरित एक नाटक-सम माना है। वाल्मीकि रामायण को हम मात्र काव्य कह सकते हैं किन्तु प्रकाश राम का रामायण आध्यात्म रामायण के अनुसार धार्मिक काव्य है। कवि वाल्मीकि का विशेष उद्देश्य संसार के लोगों को एक ऐसी सुन्दर और मनोरम कविता को प्रस्तुत करना है, जो उन्हें संसार की चिन्ताओं और विषमताओं से मुक्त कराकर एक उच्चावस्था के आनन्द समुद्र में डुबो दे और साथ हो साथ उनको भलाई का मार्ग सिखावे। परन्तु आध्यात्म रामायण के रचयिता ही की भांति तुलसीदास और प्रकाशराम तथा अन्य रामायण रचयिताओं का इस कार्य में विशेष उद्देश्य यह रहा है कि श्री राम की भक्ति का लोगों में प्रचार होना चाहिए। इसी लिए हम इनकी कविता को धार्मिक कविता कहते हैं।[1]

प्रकाशराम के रामायण में यत्र-तत्र कुछ विविधता है जो तुलसी रामायण से सर्वथा भिन्न है। जैसे कथानक में रावण को सीता का पिता दर्शाना, मन्दोदरी को माता दर्शाना और कहीं अपनी कल्पना का प्रदर्शन यथा—श्री राम का अपनी हथेलियों पर जटायु का दाह संस्कार करना और भगवान शिव का रावण को 'मक्केश्वर' (शिवलिंग) भेंट करना आदि, आदि।

प्रकाश रामायण से पूर्व राम कथा सम्बन्धी कोई ग्रन्थ कश्मीरी भाषा में उपलब्ध न होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इसकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कवि ने स्थानीय (कश्मीर सम्बन्धी) लौकिक तत्त्वों का समावेश किया है। कवि कश्मीर के प्रायः प्रमुख तीर्थों का, यहां के फूलों एवं प्राकृतिक दृश्यों का यत्र-तत्र वर्णन करने का लोभ संवरण नहीं कर सका है। दशरथ के विलाप में "हरमुख गंगा" (कश्मीर) की यात्रा का विस्तृत वर्णन किया है। सीता जी के भूमि में अन्तर्धान होने की वार्ता का सम्बन्ध शंकरपुर के

१, काशुर रामायण (कश्मीरी रामायण) सं० डॉ० बलजिन्नाथ पंडित पृ० १५—१६

'शंकर्षण-नाग' के साथ जोड़ा है।

प्रकाश रामायण का सारा कथानक सात खण्डों में विभक्त है। परिशिष्ट में लव-कुश चरित भी दिया गया है। प्रो० 'पुष्प' के अनुसार "लव-कुश चरित" में सीता का करुणा निवेदन तो कश्मीरी साहित्य में बिल्कुल निराली चीज़ है।

कवि तुलसी की भान्ति शैव और वैष्णवों के बीच अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध प्रदर्शित करने में भी सफल हुआ है। वास्तव में तुलसी ही को भांति प्रकाशराम ने भी राम के लोक संग्रही स्वरूप की स्थापना की। राम के चरित्र में दोनों ने लोक और शास्त्र का समन्वय प्रस्तुत किया है। तुलसी के राम कहते हैं :—

"शिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहु मोहिं न भावा।
संकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकीय मूढ मति थोरी॥"

इसी बात को प्रकाश राम ने भी अपने रामचरित में प्रस्तुत किया है। उन्हों ने भगवान शिव के द्वारा श्री राम की महिमा को गाया है। प्रकाशराम ने बालकाण्ड में ही शिव-पार्वती संवाद नामक प्रसंग में पार्वती जी द्वारा प्रश्न करने पर शिवजी द्वारा श्रीराम अवतार की महिमा का वर्णन किया है।

"वोन्दस कथ थाव तम्यसुन्ट नाव ह्यन कॅत्य।
मोकलन नारँ नरॅकक्य निशि तमी सॅत्य॥

अगाफिल यिम मनुष्य ह्यन राम सुन्द नाव।
तिमन सोरुय मनुक मलचर छलनॅ आव॥

अदय कॉछा सोर्यस मनॅ किन्य हर्यस आय।
रियस दर्शुन नियस बैकुण्ठ छस जाय॥

अदय काँह लोलॅ किन्य परि रामॅ रामय।
सु प्रावी ज़िन्दॅ तने स्वर्ग जामय॥

—यह बात तुम मन में धारण करो जो उस (श्रीराम) का नाम लेंगे वह नर्क की अग्नि से मुक्त हो जायेंगे। यो मनुष्य अनबूझे हो राम का नाम लेंगे, वे सब प्रकार के मानसिक मैल से धुल जायेंगे। फिर भला यदि कोई मन से उसका स्मरण करेगा उसकी आयु में वृद्धि होगी। उसे साक्षात् दर्शन देकर उसे बैकुण्ठ में स्थान प्राप्त करने का अधिकारो बना देगा। फिर तो यदि कोई प्रेम से राम-राम पढ़ेगा वह जीते जी ही स्वर्गिक वस्त्राभूषण प्राप्त कर लेगा।

राम चरित मानस के बालकाण्ड में भी तुलसी दास ने श्रीरघुनाथ जी की महिमा का वर्णन किया है। कश्मीर में शैव मत का प्राधान्य था ही अत: प्रकाशराम ने शिव-द्वारा राम की महिमा का वर्णन करके जहां राम-भक्ति का प्रचार किया है वहां साथ ही दोनों में समानता भी दर्शायी है।

महाकाव्योचित सभी विशेषतायें प्रकाशराम के रामायण में उपलब्ध हैं। इस प्रकार परवर्त्ती सभी कश्मीरी राम-काव्यों मे यह उत्तम है। इसकी शैली पर फारसी मसनवियों की रज़मिया शायरी का प्रभाव पड़ा है। इसमें "शाहनामें" के समान जंग का चित्र खींचा है। छन्द-विधान पर भी फारसी का स्पष्ट प्रभाव है। फारसी कश्मीर की उस समय राजभाषा होने के कारण यहां के साहित्यिक जीवन पर व्याप्त थी। अत: फारसी शैली एवं भाषा का प्रकाश रामायण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। प्रकाशराम का रामायण इतिवृत्तात्मक शैली में है वहां साथ ही साथ स्तुतियों के लिए उन्हों ने गीतिशैली का प्रयोग किया है। गीति-शैली में रची गई स्तुतियों का कश्मीरी के परवर्त्ती गीति-काव्य पर काफी प्रभाव पड़ा है।

प्रकाश रामायण की एक और विशेषता जो तुलसी के रामचरित के अनुकूल है--वह है प्रकृति वर्णन—कश्मीर के प्राकृतिक दृश्य अनूठे हैं। उनका तादात्म्य श्री राम के चरित्र के साथ करके कवि ने अनूठा काव्य-कौशल प्रदर्शित किया है। प्रकृति श्रीराम की अनुचरी है। वनवास के समय उनके अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करती है। जिस किसी भी मार्ग से श्री राम, लक्ष्मण और सीता जाते हैं वहां फूल खिलते हैं। जहां वह कुछ खाने बैठते हैं वहां सुन्दर जलाशय फूट पड़ते हैं :—

पकान यमि वति गच्छान तति पोशि बागय।
ख्यवान यति केह वुछान तति नागॅ रादय।।

'इश्क-पेचान' एक पुष्प-लतिका का प्रेम काव्य में कश्मीरी कवियों ने बारम्बार वर्णन किया है। इसका बड़ा ही करुण वर्णन प्रकाशराम ने भी किया है। अशोक वाटिका में सीता जी बिलख-बिलख कर इसलिए रो रही हैं कि क्या श्री राम उन्हें अपनायेंगे ? मन्दोदरी सान्त्वना दे रही है :—

'अरी, क्यों तूने 'इश्क-पेचान' का रूप धार लिया है ? क्यों तूने अपने आप को रुदन की रस्सी (बेल) पर चढ़ाया ? क्यों तूने अपने नर्गिसी रूप को मुर्झा

दिया है ? अपनी आंखों से तूने अश्रुओं के बदले लहू बरसाया ? अपने इस दुःखद रूप से तूने मेरी गोदी को अग्नि से भर दिया ।

(कवै बापथ च्ये लोगुथ अश्क-पेचान ।
मतै वदतम कथय खोरुथ रज़े पान ।।
कवै बापथ यम्बर ज़ल बरँ कँरथम ।
होरुथ रअ वारियाह बेब न.र बरथम ।।)

वास्तव में प्रकाश राम ने सजीव एवं मनोरम प्रकृति चित्रण करके न केवल 'रामचरित' को उत्कृष्ट काव्य-कृति बनाया अपितु प्रकृति वर्णन करने वाले अद्वितीय कवि का स्थान भी ग्रहण किया। इसी प्रकार तुलसी भी प्रकृति वर्णन करने में कुछ कम नहीं।

'मानस' में अशोक वाटिका में स्थित त्रिजटा सीता जी आकाश के तारों को अंगार के समान देख रही है। चन्द्रमा उसके लिए अग्निमय है। अशोक-वृक्ष के नऐ-नये कोमल पत्ते उसे अग्नि के समान लग रहे हैं।

(देखियत प्रगट गगन अंगारा ।
अवनि न आवत एकउ तारा ।।
पावकमय ससि स्रवत न आगी ।
मानहुँ मोहि जानि हतभागी ।।
सुनहि विनय मम विटप असोका ।
सत्य नाम करू हरु मम सोका ।।
नूतन किसलय अनल समाना ।
देहि अगिनि जनि करहि निदाना ।।

'अरण्य-काण्ड' में बसन्त के आगमन पर श्रीराम की स्थिति दर्शनीय है :—

देखहु तात बसन्त सुहावा ।
प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ।।

विरह विकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ।।
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ मनहुं तब कटकु हटकि मनजात ।।

विटप विसाल लता अरुझानी ।
विविध वितान दिए जनु तानी ।।
कदलि ताल बर धुजा पताका ।
देखि न मोह धीर मन जाका ।।
विविध भांति फूले तरु नाना ।
जनु बानैत बने बहु बाना ।।
कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाए ।
जनु भट बिलग बिलग होई छाए ।।

— — — —

मधुकर मुखर भेरि सहनाई ।
त्रिविध बयारि बसीठीं आई ।
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हें ।
विचरत सबहि चुनौतो दीन्हें ।।

इसी प्रकार से 'किष्किन्धा काण्ड' में वर्षा-वर्णन भी अति सुन्दर हुआ है ।

अन्त में यही कह सकते हैं कि तुलसी और प्रकाशराम ने क्रमश: हिन्दी और कश्मोरी में वर्णानुकूल भाषा, सरस एवं प्रभावशाली शैलो में श्रीरामचरित लिखकर युगों युगों के लिए अपना नाम अमर कर दिया है ।

गोस्वामी तुलसीदास

—जगदीश प्रसाद द्विवेदी

"मुझे कोई वस्तु इतना आनन्दित नहीं करती, जितना कि गीता का संगीत और तुलसी कृत रामायण।" ये हैं महात्मा गांधी जी के शब्द जिनसे ज्ञात होता है कि वह तुलसीदास जी से कितना प्रभावित थे। भारतीय और विदेशी साहित्यकारों, विद्वानों एवं महापुरुषों ने तुलसीदास जी की मुक्त कन्ठ से प्रशंसा की है। श्री मैक्डानल का कहना है कि "रामचरित मानस" अपनी उत्कृष्टता और पवित्रता के आदर्शमान के कारण उत्तरी भारत के करोड़ों निवासियों के लिए बाइबिल के समान है लेकिन मिस्टर ग्रिफिथ तो यहां तक कहते हैं कि "The Ramayana of Tulsidas is more popular and more honoured by the people of the north west provinces of India, than the "Bible" is by the corresponding class in England." सुप्रसिद्ध इतिहासकार आर्थर स्मिथ का विचार है कि तुलसीदास अपने समय के सबसे महान व्यक्ति थे अकबर से भी वह महत्तर थे। "Yet that Hindu was the greatest man of his age in India, greater even than Akbar himself" श्री एफ. एस. ग्राउज, श्री डी. पी. हिल और एटकिंसन ने 'रामचरित मानस' के तीन अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। रूसी विद्वान नरान्निकोव ने रूसी भाषा में 'रामचरित मानस' का अनुवाद किया है। वह तुलसी की भाषा को मुख्य जनवादी तत्व मानते हैं उनके अनुसार तुलसीदास की भाषा स्वाभाविक है, मिठास लिये हुये है और जन साधारण की भाषा है जिससे उनकी प्रगतिशीलता का परिचय मिलता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गोस्वामी तुलसीदास भारत की महान विभूति थे, जाॅर्ज ग्रियर्सन के मतानुसार गौतम बुद्ध के पश्चात भारत में जिस महापुरुष का आविर्भाव हुआ वे थे गोस्वामी तुलसीदास। वास्तव में गोस्वामी जी का आविर्भाव धर्म और साहित्य के क्षेत्र में एक चमत्कार ही समझना चाहिये। उत्तर भारत की जनता तो तुलसीदास जी की रामायण का वेदों के समान ही आदर करती है। रामचरित मानस तो महाकाव्य में इतिहास है और इतिहास में महाकाव्य है। वस्तुतः वह मानव जीवन का महाकाव्य है इसके द्वारा गोस्वामी तुलसीदास ने सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा की थी। तुलसीदास जी ने जिस विषय पर भी लिखा उसका सजीव चित्र अंकित कर दिया, इससे ज्ञात होता है कि बाह्य प्रकृति और मनुष्य की अन्तः प्रकृति का उन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण किया था। मनुष्य का, समाज का, प्रकृति का अत्यन्त हृदयग्राही चित्रण तुलसीदास जी ने किया है।

अपने समय के समाज में जो भी श्रेष्ठ सामग्री थी, उस सबका उपयोग तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में किया है। वह उस काल के प्रतिनिधि कवि थे और उन्होंने समाज में फैले हुए रोग को देखा, उसका निदान किया और अपने ही ढंग से उसकी चिकित्सा करने की चेष्टा की। यह सभी एक मत से स्वीकार करते हैं कि तुलसीदास जैसा जागरूक साहित्यकार हिन्दी साहित्य में और कोई नहीं हुआ। रोग की कृच्छसाध्य अवस्था देखकर भी वे हतोत्साहित नहीं हुए और "रामचरित मानस" रूपी अमृत से उसका उपचार करने में लग गये। धीरे-धीरे उन्होंने सफलता भी प्राप्त की। जिस समय तुलसीदास जी हुए, वह समय अकबर और जहांगीर का समय था। मुगल साम्राज्य का वह उत्थान काल था। हिन्दू समाज श्री हीन हो रहा था। सर्वत्र निराशा की भावना व्याप्त थी। सामाजिक चेतना और धार्मिक भावना निष्प्राण हो रही थी। कबीर ने समाज में कुछ प्राण भरने की चेष्टा की थी, लेकिन वह सान्त्वना मात्र ही थी, क्योंकि लोक जीवन का कोई आदर्श उन्होंने नहीं रक्खा था। मलिक मुहम्मद जायसी ने "पद्मावत" जैसी प्रेम कहानियां लिखीं, उनसे जनता का मनोरंजन तो हुआ, लेकिन किसी आदर्श की स्थापना नहीं हो सकी। तुलसीदास की दृष्टि इस अभाव की ओर गई और उन्होंने राम के लोकरक्षक रूप का आदर्श प्रस्तुत किया। इस प्रकार तुलसी के राम ने निरुत्साहित हिन्दू समाज में नया जीवन व नई स्फूर्ति भर दी। तत्कालीन समाज के सामने कोई उच्च आदर्श नहीं था। उच्चवर्ग विलासिता में डूबा हुआ था और निम्नवर्ग दरिद्र था, अत्याचार से पीड़ित था।

विभिन्न मत व सम्प्रदाय अपने मतों का प्रचार कर रहे थे। नाथ पन्थी हठयोगी चमत्कार दिखाकर जनता को भ्रमित करते थे।

"सुभ आचरण कतहुं नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरिभगति न जप तप ज्ञाना। सपनेहुं सुनिय न वेद पुराना ॥
बाढ़े खल वहु चोर जुवारा। जे लम्पट पर धन पर दारा ॥
मानहिं मातु पित नहिं देवा। साधुन्ह सन करवानहिं सेवा ॥"

विधर्मियों के अत्याचारों के दो परिणाम हुए, हिन्दू धर्म ह्रासोन्मुख व विश्रृंखलित होने लगा और समाज में अनैतिकता की वृद्धि होने लगी। आत्म रक्षा की भावना से हिन्दू समाज में धर्म सम्बन्धी नियमों की कठोरता बहुत बढ़ गई। साम्प्रदायिक घेरे बन्दी, जाति पांति, पारस्परिक भेद भाव की कसावट अधिक से अधिक होती गई। तुलसीदास जी ने रावण के अत्याचारों से संत्रस्त देवता व ऋषियों के रूप में विधर्मी, विदेशी शासकों द्वारा भारतीय जनता पर किये गये अत्याचारों का सजीव चित्र खींचा है :—

"करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं कर माया ॥
जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला ॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाऊं पुर आग लगावहिं ॥

तुलसीदास जी ने पथभ्रष्ट, विश्रृंखलित, मत मतान्तर और निराशा में फंसी जनता के सामने राम के शक्ति, शील और सौन्दर्य पूर्ण रूप को रक्खा और कहा :—

"जब जब होइ धरम की हानी।
बाढ़हिं असुर महा अभिमानी ॥
तब तब धरि प्रभु मनुज सरीरा।
हरहिं सकल सज्जन भव पीरा ॥"

"स्वान्तः सुखाय" लिखने पर भी तुलसीदास जी की रचनायें जनता का कल्याण करने वाली थीं, समाज में नये प्राण डालने वाली थीं। कलि के दुखों, और विधर्मियों के अत्याचारों से त्राण पाने के लिए उन्होंने "राम" रूपी सुधा प्रस्तुत की और राम नाम का प्रचार किया।

"कलि कुटिल जीव निस्तार हित, वाल्मीकि तुलसी भयो।"

"आनन्द कानने ह्यास्मिन् तुलसी जगमस्तरूः ।
कविता मञ्जरी भाति राम भ्रमर भूषिता ।।"

तुलसीदास जी का दृष्टिकोण समन्वयवादी था । उन्होंने लोक व शास्त्र का समन्वय किया । भाषा व संस्कृति का समन्वय किया । भक्ति, ज्ञान व कर्म का समन्वय किया । गृहस्थी व वैराग्य का समन्वय किया । निर्गुण व सगुण का समन्वय किया । ब्राह्मण व चाण्डाल का समन्वय किया । प्रवृत्ति ब निवृत्ति का समन्वय किया । आदर्श व व्यवहार का समन्वय किया । अद्वैतवाद, द्वैतवाद एवं बिशिष्ट अद्वैतवाद का समन्वय किया । शैव, शाक्त और वैष्णवों का समन्वय किया ।

उच्चकोटि के विद्वान, साहित्य कला मर्मज्ञ और शास्त्रों के पण्डित होते हुये भी वह अत्यन्त नम्र थे :—

"कवि न होंउं नहिं चतुर प्रवीनू ।
सकल कला सब विद्या हीनू ।।
कवित बिवेक एक नहिं मोरे ।
सत्य कहों लिखि कागद कोरे ।।"

गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार ईश्वर कार्य करने में स्वतन्त्र है । किन्तु रस्सी से बंधे बन्दर अथवा पिंजरे के तोते के समान जीव परतन्त्र है । मनुष्य में विवेक शक्ति है इसलिए वह अपने कार्य के लिये उत्तरदायी है । अज्ञान के कारण कभी-कभी ऐसा मालूम पड़ता है कि करने वाला कोई और है तथा भोगने वाला कोई और । अच्छे कार्यों का फल सुख देता है इसलिये उन्हें करते रहना चाहिये । कर्म सिद्धान्त सबके लिये है । जो जैसा करता है, वैसा भरता है । पाप शान्ति के लिये ध्यान, तीर्थ, तप आदि की आवश्यकता है, परन्तु देखा जाता है कि पाप रक्तबीज की तरह बढ़ते रहते हैं और भगवत कृपा ही उसके लिये रामबाण है :—

"करतहुँ सुकृत न पाप सराहीं । रकत बीज जिमि बाढ़त जाहीं ।
हरनि एक अघ-असुर जालिका । तुलसीदास प्रभु कृपा कालिका ।।"

गोस्वामी जी के अनुसार जीव अविनाशी, नित्य, चेतन, अमल और सुखराशी है । वह ईश्वर का अंश है ।

"ईश्बर अंस जीव अविनासी । चेतन, अमल, सहज सुखरासी ।।"

मुक्ति शान्ति की एक अवस्था है जो सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य एवं सालोक्य चार प्रकार की होती है। पर भक्त लोग मुक्ति नहीं चाहते, उन्हें तो वह अपने आप ही प्राप्त हो जाती है :—

"रामभजन सोइ मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आवइ बरिआई।।"

मुक्ति पाने के लिये कर्म, ज्ञान और भक्ति के मार्ग हैं। गोस्वामी जी यद्यपि ज्ञान और भक्ति को एक जैसा समझते हैं :—

"भगतिहि ज्ञानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भव सम्भव खेदा।।"

फिर भी उनका अधिक झुकाव भक्ति की ओर है क्योंकि ज्ञान पर माया का प्रभाव पड़ जाता है। इस में अनेक विघ्नों की सम्भावना भी रहती है :—

"ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।"
"ज्ञान का पन्थ कृपाण की धारा।"

तुलसी के राम परब्रह्म और सीता मूल प्रकृति हैं। वे उनके अन्तःकरण में ही विराजमान नहीं थे अपितु सारे संसार में भी व्याप्त थे। "सियाराम मय सब जग जानी। करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी।।" तुलसी के राम ज्ञानस्वरूप व मायाधीश होने के साथ ही "सगुण ब्रह्म" भी हैं। राम की माया उनके संकेत पर सृष्टि का संहार और पालन करती है। यह समस्त विश्व माया के वश में है। ईश्वर व जीव में कोई भेद नहीं है। जो भेद दिखाई देता है, उसका कारण माया है। माया का यह बन्धन केवल राम की भक्ति से ही छूट सकता है। तुलसीदास जी मोक्ष की अपेक्षा "रामभक्ति" को अधिक महत्व देते थे। उनके अनुसार भक्ति भगवान की कृपा से प्राप्त होती है। निर्गुण व सगुण में कोई भेद नहीं है "अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा। दोऊ हरहिं भव सम्भव खेदा।।" निर्गुण ब्रह्म भक्त के प्रेम और श्रद्धा की शीतलता पाकर सगुण हो जाता है, निराकार से साकार बन जाता है। जिस प्रकार "जलवाष्प" का कोई आकार नहीं हैं, लेकिन एक निश्चित सीमा की शीतलता पाकर वह "जल' और "हिम" के रूप में साकार हो जाता है उसी प्रकार राम की भक्ति सभी प्रकार के कष्टों का निवारण करती है। "राम का नाम" राम से भी बढ़ कर है "राम तें अधिक राम कर नामा।" नीच से नीच प्राणी भी राम का नाम लेने से पार लग जाता है 'उल्टा नाम जपा जग जाना। बाल्मीकि भयेब्रह्म समाना।।" राम का जाप करने से अन्दर और बाहर प्रकाश हो जाता है "राम नाम मणि दीप धरि जोह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उजियार।।"

तुलसीदास जी उदार भक्त कवि थे। उन्होंने किसी मत व सम्प्रदाय का खण्डन मण्डन नहीं किया। उनका दृष्टिकोण समदर्शी और समन्वयवादी था। वर्णाश्रम धर्म के समर्थक होते हुये भी, उपासना के क्षेत्र में वह जाति पांति की मर्यादा को नहीं मानते थे "जाति पांति जानै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई ।। विशिष्ट अद्वैतवादी होते हुये भी तुलसीदास जी की आस्था शंकराचार्य के अद्वैतवाद में थी। उन्होंने "विष्णु भगवान" के अवतारी रूप "राम' को लोक रञ्जनकारी रूप में सबके सामने रक्खा और मानव मात्र को सगुण भक्ति का अधिकारी बताया।

गोस्वामी जी के लिये "रामराज्य" आदर्श था। उनके राजनीति सम्बन्धी विचार प्रशंसनीय हैं।

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।।
सोचिय नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।।

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भाग बस होहिंगे कबहु कबहु कलिकाल ।।
बरषत हरषत लोग सब करषत लखें न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग तें भूप भानु सम होह ।।

श्रेष्ठ राजा, माली, सूर्य और किसान की तरह होता है। माली सूखते हुये पौधों में जल डालता है। इसी तरह राजा दीन दुखियों की रक्षा करता है। जिस प्रकार सूर्य समुद्र से जल लेता है, वैसे ही चतुर राजा बिना कष्ट दिये हुये जनता से कर लेता है और उस धन को जनता की भलाई के लिये व्यय करता है। जिस प्रकार किसान खेत जोतता है खाद डालता है, बीज बोता है, पानी देता है, देखभाल करता है और अन्त में खेती के तैयार होने पर उसे काट लेता है उसी प्रकार योग्य राजा भी अपनी प्रजा की देख रेख और कल्याण करता है। उससे आवश्यक धन संग्रह करता है।

तुलसीदास जी का जन्म संवत १५८९ में हुआ था। उनका जन्म स्थान सोरों (जिला एटा) है अथवा राजापुर जिला बांदा), इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। वह सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उनका बाल्यकाल का नाम रामबोला

था। पिता का नाम 'आत्माराम' और माता का नाम 'हुलसी' था। बचपन में इन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा "बारें ते ललात बिललात द्वारे द्वारे दीन जानत हौं चारि फल चार ही चबक कों।" सूकर क्षेत्र में उन्होंने अपने गुरू श्री नरहरि से रामकथा सुनी और उनके साथ ही वह काशी जाकर पंच गंगा घाट पर रहने लगे। वहां उन्होंने महात्मा शेष सनातन से पन्द्रह वर्ष तक वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुरान आदि पढ़े। फिर राजापुर लौटकर दीन-बन्धु पाठक की सुपुत्री रत्नावली से विवाह किया। प्रसिद्ध है कि नवयुवक तुलसीदास सांसारिकता और अपनी पत्नी में इतने अनुरक्त हो गये कि एक दिन उनकी पत्नी को फटकारना पड़ा, "अस्थि चर्ममय देह मम, तामें जैसी प्रीति। तैसी जो श्रीराम महं होति न तौ भवभीति॥" पत्नी रत्नावली के वचनों ने तुलसीदास को एकदम बदल दिया। वह राममय होगये और विरक्त होकर उन्होंने काशी, अयोध्या, जगन्नाथ पुरी, रामेश्वरम, द्वारिका, बद्रीनाथ, कैलाश, मानसरोवर, चित्रकूट आदि स्थानों की यात्रा की। संवत १६३१ में अयोध्या में उन्होंने अपनी सर्वोत्तम रचना 'रामचरितमानस" प्रारम्भ की और उसे दो साल सात महीने में पूरा किया। "रामचरित मानस" का कुछ भाग उन्होंने अयोध्या में लिखा, शेष भाग काशी में रहकर पूरा किया। राजा मानसिंह, अब्दुर्रहीम खान खाना, मधुसूदन सरस्वती, गंगाराम ज्योतिषी आदि उनके समकालीन प्रशंसकों में से थे। श्रावण कृष्ण तृतीया सवत् १६८० में उनका काशी में देहावसान हुआ। कुछ लोग उनके स्वर्गवास की तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी बताते हैं, "संवत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यौ शरीर॥"

तुलसीदास जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और हरि औध जी के ये शब्द सर्वथा उचित हैं कि "कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।" "रामकाव्य धारा" के तुलसीदास जी सर्वोत्तम एवं प्रतिनिधि कवि हैं। उनके लिखे हुये तेरह प्रामाणिक ग्रन्थ अभीतक उपलब्ध हो सके हैं। ये ग्रन्थ हैं:—

१. रामलला नहछू, २. जानकी मंगल, ३. रामाज्ञा प्रश्न, ४. वैराग्य संदीपनी, ५. पार्वती मंगल, ६. कृष्ण गीतावली, ७. बरवै रामायण, ८. विनय पत्रिका, ९. गीतावली, १०. दोहावली, ११. हनुमान बाहुक, १२. कवितावली, १३. रामचरित मानस।

"रामचरित मानस" वर्णनात्मक महाकाव्य है। तुलसीदास जी की अन्य रचनायें खण्ड-काव्य अथवा मुक्तक हैं। "रामचरित मानस" की प्रबन्ध

पटुता प्रशंसनीय है। कथोपथन व चरित्र चित्रण सजीव हैं। इसमें मार्मिक स्थलों तथा मानव प्रकृति के सुन्दर चित्र हैं। वाह्य दृश्यों का चित्रण, प्रकृति वर्णन आदि मनोरम है। थोड़े शब्दों में ब त से भावों को "गागर में सागर" की तरह भर दिया गया है। विनय, शोल, क्रोध, उत्साह, घृणा आदि भावों का चित्रण बड़ी निपुणता के साथ किया गया है। शृंगार, हास्य, करुण वीर, वीभत्स आदि रसों का विधान बड़ी सफलता पूर्वक किया गया है। अलंकारों का प्रयोग बड़े स्वाभाविक रूप में हुआ है। तुलसीदास जी की रचनाओं में ठेठ अवधी व साहित्यिक अवधी दोनों देखने को मिलती है। "जानकी मंगल", "पार्वती मंगल", "बरवै रामायण" में ठेठ अवधी है। "रामचरित मानस" में साहित्यिक अवधी का प्रयोग हुआ है, जिस पर संस्कृत का प्रभाव भी है। तुलसीदास जी का ब्रजभाषा पर भी अच्छा अधिकार था। "गीतावली" व "कृष्ण गीतावली" में ब्रजभाषा की हमें वही मिठास मिलती है जो "सूरसागर" में पाई जाती है। उन्होंने अपनी शब्द-योजना में कहीं भी शब्दों की तोड़ मरोड़ और खींचातानी नहीं की है। अरबी, फारसी, राजस्थानी, भोजपुरी, बुन्देल खण्डी इत्यादि भाषाओं के शब्दों को भी बड़ी चतुरता के साथ उन्होंने आत्मसात किया हैं। इनकी भाषा में सरलता, बोध गम्यता, सौन्दर्य, चमत्कार, प्रसाद माधुर्य और ओज गुण कूट कूट कर भरे हुये हैं। सभी यह मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि भाव, विषय और अवसर के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने में गोस्वामी तुलसीदास के समान और कोई नहीं हुआ एक उदाहरण देखिये :—

"कंकण किंकिनि नूपुर धुन सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।"

तुलसीदास जी ने अपने समय में प्रचलित सभी प्रकार की शैलियों में रचना करके अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता व कलामर्मज्ञता का परिचय दिया है। उन्होंने वीर गाथा काल की छप्पय शैली, विद्यापति और सूरदास की गीत शैली, जायसी की चौपाई शैली, गंग आदि भाटों की कवित्त सवैया शैली, कबीर आदि की 'दोहा' शैली, रहीम की बरवै शैली इत्यादि सभी शैलियों में उत्तम रचनायें की थीं। तुलसीदास जी की उक्तियां तो जनता के जीवन में ऐसी घुल मिल गई हैं, कि जन साधारण बात बात में उनकी उक्तियों को उद्धृत करते हैं। "प्रभुता पाई काहि मद नाहीं।" "पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।" "पर उपदेस कुसल बहुतेरे।" "परम स्वतन्त्र न सिर पै कोई।" "होइ है सोइ जो राम रचि राखा।" "कोउ नृप होइ हमैं का हानी।" "जो न मित्र दुख होइ दुखारी।" "धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपदकाल परखिये चारी।।" "तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुँ

ओर।" इत्यादि तुलसीदास जी की सूक्तियां जन-मानस में गहरी समा गई हैं और लोग दिन में न जाने कितनी बार इनका सदुपयोग करते हैं।

तुलसीदास जी ने किसी राजा महाराजा को प्रसन्न करने के लिये कविता न लिखकर 'स्वान्त: सुखाय' काव्य रचना की थी :—

"कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥"

वह कविता के द्वारा राम गुण गाते थे और सारे संसार को "सियाराम मय" समझकर उसके हित की कामना करते थे। वास्तव में वह राष्ट्र कवि थे, जनता के कवि थे। उनके काव्य ने निराश विशृंखलित, श्रीहीन समाज में नये जीवन का संचार किया। बड़े बड़े शक्तिशाली राजा, महाराजा नष्ट हो गये। महान साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ परन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी का काव्य और विशेष रूप से "रामचरित मानस" संसार को आज भी प्रकाश दे रहा है। निश्चय ही तुलसीदास एक व्यक्ति का नहीं अपितु उस काल की सर्वांगीण और सर्वोत्तम अभिव्यक्ति का एक विशिष्ट पर्याय है। भारत को इस महान विभूति को मानस चतुश्शती के पावन अवसर पर बारम्बार प्रणाम है।

मानस में वैदेही

—श्रीराम पाण्डेय

भक्त शिरोमणि महात्मा तुलसीदास के मन में भगवान श्रीराम के गुणों के गायन की तीव्र उत्कंठा हिलोरें मार रही थी। उन्होंने अपने इष्टदेव राम तथा जगज्जननी माता जानकी जी का वर्णन अपने सुप्रसिद्ध काव्य रामचरित मानस में ब्रह्म रूप में किया है।

तुलसी ने जानकी जी में सच्ची साध्वी, पतिव्रता, धर्मपरायणा तथा नम्रता, सेवा और संयम आदि भारतीय स्त्रियों के जितने भी गुण हैं, उनका आदर्श प्रस्तुत किया है।

सीता चरन प्रणाम करि, उरहिं सुमिरि रघुनाथ।
बरनउं मातु चरित्र कों, पावन करन सनाथ ॥

सीता का चरित्र स्फटिक के समान स्वच्छ तथा गंगाजल की तरह निर्मल है। जानकी जी मर्यादाओं से इस प्रकार बंधी हुई हैं कि कवि उससे बाहर उन्हें ले जाने का प्रयास ही नहीं करता है। सीता स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये दशरथ नन्दन श्रीराम-लक्ष्मण जनकपुरी आये हुए हैं। घर घर में श्रीराम लक्ष्मण की चर्चायें हो रही हैं किन्तु सीता जी के मन में श्रीराम के देखने की उत्कंठा तक जागृत नहीं होती है। अपनी माता की आज्ञा से सखियों के साथ गौरी पूजने के लिये सीता जी वाटिका जाती हैं वहां एक सखी समाचार लाती है कि दशरथ सुत श्रीराम-लक्ष्मण जी की जोड़ी वाटिका में फूल चुन रही है। सखियां जानकी जी से इस चित्ताकर्षक राजकुमारों की युगल जोड़ी को देखने का अनुरोध

करती हैं किन्तु सीता जी अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करना चाहती। गौरी पूजन के बाद वे अपनी सखियों से घिरी हुई राजभवन लौट पड़ती हैं।

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्रकर प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥

सीता जी के मन में सच्चिदानन्द श्री राम चन्द्र को देखने की लालसा तो है किन्तु व्यग्रता नहीं है। सीमाओं का उल्लंघन न होने पाये इसका तुलसीदास ने पूरा पूरा ध्यान रखा है।

सुमिर सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीति।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥

देवर्षि नारद के वचनों का स्मरण करके सीता जी राम को देखना चाहती हैं कि उनके होने वाले पति का मुखारविन्द कैसा है किन्तु भारतीय नारियों की मर्यादाओं से बन्धी हुई सीता जी अपने को बराबर नियंत्रित रखती हैं।

चितवत चकित चहूँ दिसी सीता। कहां गये नृप किसोर मनु चिंता ॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये ॥
जब सिय सखिन्ह प्रेम बस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥

सीता जी के नयनों में श्रीराम की मनोहर छबि पैठ चुकी है। उनके मन में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के वरण की लालसा बलवती है तभी वह गौरी के मन्दिर में प्रार्थना करती हैं:—

मोर मनोरथु जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें ॥
कीन्हेउं प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेही ॥

जगत माता पार्वती जी सीता के मन का भाव समझ जाती हैं और उन्होंने प्रकट होकर आशीर्वाद दिया:—

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहिं मन कामना तुम्हारी ॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मन राचा ॥

राजा जनक का राजदरबार लगा हुआ है। देश देश के राजा-महाराजा जानकी जी का स्वयंबर देखने के लिये आये हुए हैं। इसी बीच जानकी जी

अपनी सखियों के साथ रंगभूमि में पदार्पण करती हैं। सीता जी का मन श्रीराम के चरणार विन्दों में लगा हुआ है :—

सीय चकित चित रामहि चाहा। भये मोहबस सब नर नाहा ।।
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई ।।

यज्ञ मण्डप में उपस्थित राजा महाराजा आशुतोष भगवान शंकर के विशाल धनुष को चढ़ाने का प्रयास रते हैं किन्तु सीता जो भगवती पार्वती को स्मरण करके विनय करती हैं :—

मन ही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई ।।
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी ।।

सीता को एक एक क्षण मानों युग के समान लगता है। स्वयंवर में उपस्थित राजकुमार धनुष की प्रत्यंचा को भी नहीं चढ़ा सके। इसलिये सीता जी शंकित हो जाती हैं कि कहीं श्रीराम भी तो इस धनुष को उठाने में असमर्थ न हों। किन्तु रंगशाला में सीता जी ने कहीं ऐसी उत्सुकता प्रदर्शित नहीं की है जिससे भारतीय नारी के गुणों का, मर्यादा का उल्लंघन हुआ हो।

तौ भगवान सकल उर बासी। करहिं मोहिं रघुपति की दासी ।।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलई न कछु सन्देहू ।।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम ने गुरु का अनुशासन प्राप्त कर नीलकण्ठ शंकर का धनुष एक क्षण में चढ़ाया और तोड़ डाला। राजा जनक समेत सकल पुरवासी शिव पिनाक के टूटते ही प्रसन्न हुए और महर्षि सतानन्द जी ने सीता जी को श्रीराम के गले में जयमाला डालने का आदेश दिया :—

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ।।
सखी कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता ।।

दशरथ नन्दन श्रीराम के साथ विवाहोपरान्त जानकी जी अयोध्या आ जाती हैं। महाराजा दशरथ अपने कुल गुरु श्री वशिष्ठ जी की अनुमति ले कर

उतर आई हो। सौम्य चेहरे, उज्ज्वल ललाट। चारों ओर शान्त वातावरण कितना मनोहारी था यह सब।

"आश्रम की एक बार परिक्रमा कर ली जाये···" ऐसा सोचकर राघव निकल पड़े। सौमित्र के कन्धे पर हाथ रखे हुये वे दूर तक फैली वनस्थली को निहारते जा रहे थे।

"भाई, देखते हो यह छटा ? पंचवटी की याद हरी हो उठी है ···" राम किन्हीं स्मृतियों में डूबते से कहे जा रहे थे।

"कैसे थे वे दिन, जब यह वृक्ष हमारे साथी थे। वृक्षों की छांव में ही तो हम लोग ·· चौदह वर्ष ···· सारे कष्टों को झुटलाते रहे थे ·····।"

"हां, अग्रज।"--सौमित्र ने ग्रीवा झुकाये-झुकाये हामी भरी।

"भाई, क्या तुमने उन ऋषि-कुमारों के नेत्रों में हमारे प्रति तैरते घृणा भाव को अनुभव किया ? क्या कारण हो सकता है ? जानते हो तुम ?"

"जानता हूँ अग्रज, जानता हूँ !! भगवती सीता को त्याग देने वाले अयोध्यापति ही उन आंखों के लक्ष्य बने हैं आज ··।" सौमित्र अपनी रुलाई न रोक पाये। मां-स्वरूपा भगवती सीता का उनके प्रति अगाध स्नेह आज उन्हें पुनः स्मरण हो उठा।

"तो, आज मैं भी त्याज्य हो चला ? ठीक है। जग की रीतियां निभाने में यह अयोध्यापति क्यों हिचके ? प्रजा की सम्मति से ··अयोध्यापति एक क्या, सहस्रों सीतायें त्याग सकता है। परन्तु राम ने कभी सीता को नहीं त्यागा लक्ष्मण। वह तो अब भी उसके अन्तर में विहार करती है। आह, भाई तुमने भी कौन सा घाव कुरेद दिया। पीड़ा अनुभव होने लगी है। चलो वापस लौट चलें। महर्षि हमारी बाट जोह रहे होंगे।"

दोनों भाई जब महर्षि के पास वापस आये तो देखा महर्षि किसी अधूरे महाकाव्य को लिखने में लीन हैं।

सौमित्र सहित राम महर्षि के सम्मुख चुपचाप जा बैठे। महर्षि की तल्लीनता को उन्होंने भंग करना उचित न समझा।

दिये की टिमटिमाती ज्योति-शिखा कुटिया में प्रकाश बिखेर रही थी। महर्षि की लेखनी कोरे-पत्रों पर अबाध गति से फिसलती चली जा रही थी। एकाएक वे लिखते-लिखते रुक गये। लगा कि कुछ सोच रहे हैं। परन्तु सामने दाशरथि-पुत्रों को बैठा देख सकुचाये और फिर ठठाकर हंस पड़े।

"देख आये आश्रम ? कैसा लगा—?"

"अति सुन्दर ··· ···।"—आंखों में तैरते विषाद को छिपाते हुए बोले राघव।

"क्या लिख रहे हैं महर्षि ? यह अकिंचन भी अवगत होगा क्या ?"

"अवश्य। परन्तु मेरी इस रचना को सुन सकोगे ?" महर्षि कुछ सकपकाये।

"क्यों नहीं।"

"एक क्षण रुको।"—महर्षि ने कहा और द्वार पर खड़े ऋषिकुमार को निकट बुलाकर उसके कान में कुछ कहा। ऋषि-कुमार आज्ञाकारी बालक की भांति सिर झुकाये बाहर चला गया और थोड़ी देर बाद दो नन्हें ऋषि-कुमारों को साथ लिये वापस लौट आया। नन्हे ऋषि-कुमारों के हाथों में वीणा थी। राम ने उन्हें देखा तो देखते ही रह गये। सौमित्र भी उन्हें एक टक देखते ही रहे ··· ···।

"अयोध्यापति राम को हमारा अभिवादन।" दोनों ऋषि-कुमारों ने एक साथ राम का अभिवादन किया।

"आयुष्मान हो बालको, क्या नाम हैं तुम्हारे ?" राघव ने प्रश्न किया।

"मेरा नाम लव और यह मेरा अनुज कुश—।" जो देखने में दूसरे से कुछ बड़ा लगता था उसने उत्तर दिया।

"······नन्हे-मुन्ने ये बालक किन्हीं मृग-शावकों के छौनों से प्यारे। मेरे मन में इन्हें देखते ही हूक सी क्यों उठने लगी ? काश, मेरे भी ···।" राम के मन में तूफान उठ रहे थे। पर, ऊपर से वे एकदम मौन बने बैठे रहे, स्तब्ध।

"अयोध्यापति, कुछ सुनाने से पहले मैं चाहूँगा अपनी इस रचना के बारे में तुम्हें कुछ बता दूं। मेरी इस रचना की प्रेरणा है मर्यादापुरुषोत्तम राम और जगज्जननी मां सीता। वीरता की प्रतिमा लक्ष्मण और भगवानभक्त मारुति। मेरे इस महाकाव्य के नायक अयोध्यापति नहीं हैं। अपितु दु:खीजनों क रत राम। दुष्ट-दलन करते राघव राम। अत: यदि कहीं पर दास की शब्दावली कुछ कठोर लगे तो क्षमस्व दें।" रुन्धे कण्ठ से महर्षि ने भूमिका समझाई।

"लज्जित न करं, महर्षि ···।" राम ने हाथ मलते हुए कहा।

"बच्चो इधर बैठ जाओ। आज तुम्हें अपनी वीणा पर वह सब गुनगुनाना होगा जो अब तक तुम दोनों कण्ठस्थ करते आये हो। देखना गल्ती न हो ···।" महर्षि के उज्ज्वल ललाट पर एक दीप्त आभा तिरोहित हो उठी।

नन्हे कुमारद्वै ने अपनी-अपनी वीणायें सम्हालीं और फिर भगवान राम के उज्ज्वल आदर्शों पर आधारित वाल्मीकि रामायण की पंक्तियां नन्हें श्रीमुखों को स्वर-लहरी तथा वीणा की मृदुल ध्वनि के साथ वातावरण में तिरने लगीं।

वीणा की झंकार, मृदु-कण्ठों से निकलती मधुर ध्वनि समस्त आश्रम में व्याप्त होने लगी। काव्य की पंक्तियां जैसे-जैसे आगे बढ़ती जातीं, कथानक भी आगे बढ़ता जाता। भगवती सीता का राम द्वारा त्याग दिये जाने का प्रसंग जब आया तो महर्षि के नेत्रों से गंगा-जमुना बह उठीं। सौमित्र की हिचकियों ने रुकना उचित न समझा। इधर दाशरथि राम देह की सुध-बुध विस्मृत कर बैठे थे। उनका समस्त शरीर पत्ते सा कांप रहा था। अचानक राम संतुलन खो बैठे और मूर्छित हो गये।

सौमित्र ने स्वयं को संभाला, अपने उत्तरीय से वे अग्रज को हवा करने लगे। वीणा-वादन स्थगित हो गया। महर्षि दौड़कर कमण्डल में जल ले आये और राघव के मुखारविन्द पर छींटे देने लगे। थोड़ी ही देर में राम की चेतनता लौटी।

"कहां जा छिपीं तुम? अभी तो खड़ीं थीं मेरे पास?" राम अर्द्ध-विक्षिप्त से बड़बड़ाये।

"कौन, कहां गया राघव?" महर्षि उत्सुकता न छिपा पाये।

"भगवन, मेरी सीते……जो अभी-अभी तो मुझसे वार्तालाप कर रही थी……कहां है ?" राम पुनः मूर्छित होते हुए बड़बड़ाये।

राम को पुनः चेतना खोते देख महर्षि ने मन ही मन सोचा—"शायद मेरे महाकाव्य की विराम-रेखा आ गई।"

"देवि, अब त्याग दो यह शोक, तुम्हारा राम तुमसे क्षमा मांगने आया है। उसे अवलम्बन दो जाकर। अन्यथा दिशायें भी रो पड़ेंगी। मुझसे तो नहीं थमते मेरे आंसू वह रहस्य कह देने पर आज विवश हो उठा मेरा अन्तर जो अब तक छिपाये रहा लोककल्याण के लिये। राम की निष्ठुरता दूर हो चुकी है। देखो तो जाकर राघव कैसे बालकों की भांति रो रहे हैं। आज आश्चर्य हो रहा है विश्व-स्रष्टा को विरह की अग्नि में बिलखते देख। जाओ देवि राघव के पास अन्यथा सूर्य की सारी तपन आज पृथ्वी पर फट पड़ेगी।" सान्यासनीरूपा भगवती सीता के चरणों में लोट-पोट होते हुये महर्षि ने उन्हें पूर्णस्थिति बताई और फिर साथ लेकर उन्हें अपनी पर्णकुटी में जा पहुंचे जहां राम अब भी मूर्छित पड़े थे। सौमित्र दुःखित-हृदय पूर्ण तत्परता से उनके मुख पर जल के शीतल छींटे दे रहे थे।

"आओ प्रिये। अन्यथा यह हृदय फट जायेगा…… कहां हो तुम ?" राम के मुख से अस्पष्ट शब्द स्वतः निकल रहे थे।

भगवती सीता अपने को रोक न सकी। सारी लोक-लाज भूल वे राम के वक्षस्थल से जा लगीं और फूट-फूट कर रो पड़ी। राम के वक्षस्थल पर उनके गर्म आंसू जो गिरे तो राम के हृदय-मरुस्थल में गंगा फूट पड़ी मानो। उनकी चेतना वापस लौट आई।

साक्षात् सीता को सामने देख राम अपनी प्रसन्नता भी व्यक्त न कर सके। और पुनः रो पड़े। वेदना का सुखद अन्त हो गया। मिलन का शुभ्र प्रात उदित हो रहा था।

"मुझसे ऐसी क्या त्रुटि हो गई थी जो आर्यपुत्र ने मुझे मेरा अपराध बताये बिना ही त्याग दिया ?"

"क्षमा कर दो प्रिये। यह राम बड़ा ही क्षुद्र-हृदय है।" राम भाव-विभोर हो आगे बढ़े।

अपने जेष्ठ पुत्र श्रीराम को अयोध्या का राज्य सौंपकर जीवन के अन्तिम दिन हिन्दू रीति नीति के अनुसार बिताना चाहते हैं। इसी बीच अचानक पटाक्षेप होता है और श्रीराम को राज सिंहासन के स्थान पर १४ वर्ष का वनवासी जीवन बिताने की तैयारी करनी पड़ती है। राम वन गमन का समाचार पाते ही सीता जी अपने पति श्रीराम के साथ वन जाने को तैयार हो जाती हैं। राज परिवार को त्याग कर वन जाने में जो जो कठिनाइयां आयेंगी उनके प्रति श्रीराम उन्हें अवगत कराते हैं किन्तु वे दृढ़ प्रतिज्ञ सीता जी के निश्चय को बदलने में सफल नहीं होते हैं।

तनु बिनु धाम धरनि पुर राजू। पति विहीन सब सोक समाजू ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

सीता जी के इतने बड़े संकल्प से उन्हें कौन डिगा सकता है। राजमहलों का विलास आर्य नारी के लिये पति को अनुपस्थिति में व्यर्थ लगता है। मैथिली को सास समझाती हैं—किन्तु उनका दृढ़ निश्चय अटल है :—

मैं पुनि समझ दीखि मन माहीं। पिय वियोग सम दुख जग नाहीं ॥

अयोध्या का राज छोड़ कर अपने प्रिय राम के साथ सीता जंगलों को ओर चल पड़ती है। रास्ते में ग्राम बधुएं सीता जी को सूरत निहार कर बड़ी प्रसन्न होती हैं। ग्राम बधुएं सीता जी से पूछती हैं :—

कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी ॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढांकी। पिय तन चितय भौंह करि बांकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हि सिय सयननि ॥

भारतीय रमणियों की परम्परा का पालन करती हुई सीता जी ग्रामीण स्त्रियों को इस प्रकार से समझाती हैं कि उन्हें निराशा न हो।

चित्रकूट में श्रीराम से मिलने के लिये अयोध्या से भरत, शत्रुघ्न तथा मातायें पुरवासियों समेत आई हुई हैं। विदेहराज जनक सपत्नीक पधारे हैं। साध्वी सती सीता जी रात में अपने माता पिता के पास न रहकर अपनी सास की सेवा में रात में रहने का निश्चय करती हैं :—

कहति न सीय सकुचि मन माहिं। इहां बसब रजनी भल नाहीं।
लखि रुख रानि जनायउ राउ। हृदय सराहत सीलु सुभाऊ॥

सीता जी अपने पातिव्रत्य धर्म का पालन करती हुई श्रीरामचंद्र जी की परिचर्या में निरंतर लगी रहती हैं। अनसुइया जी भी सीता जी को भारतीय नारी के आदर्श रूप का वर्णन करते हुए पति परायण होने की सीख देती हैं :—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखि अहिं चारी॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥

भक्तवत्सल श्रीराम धरती का भार उतारने के लिये असुरों का संहार करने को प्रतिज्ञा उठाते हैं। उन्होंने सती सीता जी को अग्नि में प्रविष्ट कराके राक्षसों को नष्ट करने का अभियान प्रारम्भ किया। श्रीराम संग में माया रूप सीता जी को लेकर आगे पंचवटी की ओर चल पड़े।

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला॥
तुम्ह पावक मंह करहु निवासा। जौं लगि वहां निसाचर नासा॥

सीया जी में स्त्रियोचित सभी गुण विद्यमान थे। पंचवटी के वन में सोने का मृग देखते ही अपने प्रिय पति श्रीराम से अनुरोध किया कि—इस मृग का चर्म बहुत ही सुन्दर होगा :—

सुनहु देव रघुवीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुन्दर छाला॥

अवसर पाकर लंकाधिपति रावण सीता जी का हरण कर ले जाता है। वैदेही पति वियोग में विलाप करती चली जाती है।

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउं कीन्हेउं रोसा॥

अशोक वाटिका में सीता जी को रावण वंदिनी बनाकर रखता है। सीता जी की रखवारी के लिये निशाचरियों की नियुक्ति कर चला जाता है। यहां भी सीता जी अपने परमप्रिय श्रीराम का निरंतर ध्यान कर उनका नाम जपती रहती हैं। रावण विविध प्रकार से सीता को लालच देता है किन्तु सती सीता का मन रावण की चिकनी चुपड़ी बातों के तनिक भी नहीं आता हैं। राम के वियोग में सीता आश्रम में दुखी होती हैं :—

मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।।
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।

अशोक वाटिका में शोकरत जगज्जननी माता जानकी जी बैठी हैं कि इन्हीं क्षणों में पवनपुत्र हनुमान रामदूत के रूप में अपना परिचय श्रीराम की मुद्रिका डाल कर देते हैं। सीता जी इसे अंगार समझ कर उठा लेती हैं किन्तु जब देखती हैं कि यह ती भगवान राम के नाम से अंकित है तो हनुमान जी इसी मध्य अपना परिचय देते हैं। जानकी जी रामदूत हनुमान से कहती हैं:—

सब सोई जतन करहु तुम ताता। देखौं नयन श्याम मृदु गाता।।

सती सीता जी को श्री रघुनाथ जी के बल, तेज एवं शौर्य पर पूर्ण विश्वास है। वह जानती हैं कि श्रीराम के बाणों के आगे संसार की कोई शक्ति रुक नहीं सकती है। फिर भी जब रावण के सिरों और भुजाओं के बढ़ने का समाचार मिलता है तब वह चिंतित हो उठती हैं:—

सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी।।
बहु बिधि कर विलाप जानकी। करि करि सुरत कृपा निधान की।।

रघुकुल भूषण श्री राम लंका पति रावण का बध करके विभीषण को लंका का राज्य सौंप देते हैं। श्रीराम की आज्ञानुसार सीता जी को विभीषण अनेक प्रकार से शृंगार करवा कर अपने इष्टदेव राम को समर्पित कर देता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम ने अपनी लीला प्रकट कर सीता को अग्नि प्रवेश का आदेश देते हैं। सीता जी अपने प्रिय देवर से कहती हैं:—

लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बेगी।।
सुनि लछिमन सीता के बानी। बिरह विवेक धरम निति सानी।।
श्री खंड सम पावक प्रवेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली।।

इस प्रकार भक्त शिरोमणि संत चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने वैदेही का चरित्र चित्रण अपने प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ रामचरित मानस में विभिन्न रूपों में किया है। इन्हों ने वैदेही को आदर्श भारतीय नारी के रूप में प्रस्तुत कर समाज तथा देश का बड़ा उपकार किया है। सीता जी ने अपने पति के संकट के क्षणों में भी उतनी ही प्रसन्न है जितनी अयोध्या के राजप्रासाद में। भारतीय साहित्याकाश में सती सीता जी का अनुपम चरित्र शताब्दियों तक आदर एवं श्रद्धा से स्मरण किया जायेगा।

जग की रीति निभाने

—दीपंकर

"कौन ?"

"भगवन्, अयोध्या से राम आया है, चरण-रज लेने……।" मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ने अपने आने का तात्पर्य बताया।

"अहो, धन्य भाग। इस क्षुद्र कुटिया को पवित्र करो राघव।" महर्षि वाल्मीकि गद्-गद् कण्ठ कुटिया से बाहर निकल आये।

"कुशल से तो हैं ?"

"राघव, तुम्हारा वरद-हस्त हम पर छांव किये रहे —।" कहते हुए महर्षि झुके पद-वन्दना करने पर राम ने उन्हें अपनी आजानुबाहुओं में समेट लिया। महर्षि के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली।

अयोध्यापति राम आज वाल्मीकि आश्रम के अतिथि थे, साथ में सौमित्र भी। राम ने प्रत्यक्ष अनुभव किया उन दृष्टियों को जो उन्हे देखकर घृणा बिखेरती निकल जातीं उनके पास से। आश्रमवासियों के अन्तर में उनके प्रति यह घृणा क्यों ?

ब्रह्मचर्य से दमदमाते ऋषि-कुमारों के शरीर, मानो चन्दन के शीतल स्निग्ध तरु थे। ऋषि-बालायें ऐसी लगती थीं, मानो साक्षात् शान्ति रूप धर कर

"अरे, यह क्या कर रहे हैं आप ? सीता तो आपकी ही है, आपकी ही रहेगी। उसे अब तो··· ।" राघव की चरण-रज माथे पर लगाते हुए सीता कह रही थी।

आश्रम का वातावरण आज प्रेमाश्रुओं से पावन हो गया था। सभी ने उस उज्जवल आदर्श की गरिमा प्रत्यक्ष देखी और अनुभव की उसकी महानता।

"अपने पुत्रों को पिता का स्नेह दो राघव।" महर्षि ने उन्हीं दोनों "नन्हें ऋषि-कुमारों' को राम के चरणों पर लंवबत् लिटा दिया।

"ओह, ये मेरे पुत्र हैं। तभी तो इन्हें देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा था। पिता का स्नेह इनसे गले मिलना चाहता था शायद। मेरे पुत्रो क्षमा करनाअपने इस अकिंचन पिता को ·····।"

"पिता श्री, अब तो बताओ क्यों त्यागा था हमारी पूज्या माता को ?" लव-कुश बड़े भोलेपन से राम से प्रश्न कर उठे।

"जग की रीति निभाने····।" कहते-कहते राम ने सीता की ओर देखा और फिर दोनों पुत्रों को अपने वक्षस्थल से लगा लिया।

महर्षि अपने महाकाव्य का उपसंहार करने शीघ्रता से दौड़े लेखनी लाने।

तुलसी के मन की व्यथा

—रामनारायण उपाध्याय

मित्र मेरे :—

तुमने मेरी याद को ४०० वर्षों तक अपने मन में संजोकर रखा इसके लिए कृतज्ञता से नत हूँ। तुम्हारे इस स्नेह के लिए क्या कहूँ ? मैं भारतीय मन से अच्छी तरह परिचित रहा हूँ, जिसे भी उसने प्यार किया, उसे अपने मन के एकान्त कोने में छिपाकर रखा है। जब उसके मन में अपने प्रभु की याद जगी, तो उसने मूर्ति के सामने खड़े होकर भी अपनी पलकों के द्वार बन्द किये और अमूर्त में मूर्त के दर्शन पा लिए। इतिहास में जब उसे, अशोक और अकबर का पाठ रटने के लिए दिया, तो उसने रटे-रटाये पाठ को भूलकर, सूर और मीरां के पदों को गाया है।

वर्तमान के प्रलोभनों को छोड़कर, जिसका मन अतीत की पुरातात्विक घाटियों में भटकने और दर्शन के अनन्त आकाश में मंडराने के लिए ललकता आया है, और अपने गांव खेत की नदी पहाड़ियों को भुलाकर जिसका मन अन-देखी गंगा और हिमालय के चरणों में नत होता आया है, मैं तो आज उस भारतीय मन से अपने मन की दो बातें करने आया हूँ।

मित्र मेरे, जब से मैंने सुना है कि तुम मेरी मानस चतुरशताब्दी मना रहे हो तब से मैं रात-रात भर सो नही पाया हूं, मुझ में ऐसी कौन सी कमी रह गई है, जिसकी पूर्ती तुम करने जा रहे हो। तुमने तो मेरा कभी अपमान नहीं किया फिर इस सम्मान की बात कैसे सूझी ? तुमने तो मेरी कभी उपेक्षा

नहीं की फिर इस अतिरिक्त अपेक्षा की क्या ज़रूरत आ पड़ी तुम तो जानते ही हो कि एक लेखक के लिए, इससे बढ़कर सुख की बात और क्या हो सकती है, कि चार सौ वर्षों के बाद भी उसकी कृति घर-घर में पढ़ी जाय। एक हल चलाने वाला किसान भी उसकी चौपाइयों को गुनगुनाये और एक विश्वविद्यालय का छात्र भी उसपर डाक्टरेट ले। गांवों में उसके आधार पर राम लीलायें खेली जाएं, और विदेशों में उसके अनुवाद प्रकाशित किए जायें, प्रतियोगिताओं में उसकी प्रतियां पुरस्कार में दी जाय और शादी ब्याह में उसकी भेंट आशीर्वाद मानी जाए।

मित्र मेरे—तुम्हें इससे कौन सा सुख मिलेगा, कि जिस ग्रंथ के प्रति जनमानस में, पूजा जैसी पवित्र भावना है, उसे फाइल में बांधा जाय। जिन्होंने उसे कभी नहीं पढ़ा, वे उसका उपदेश दें और जो उसका अर्थ नहीं समझते, उनकी चार बातें सुनने के लिए मुझे बाध्य होना पड़े।

मित्र मेरे—मैं तुम्हारी भावनाओं को समझता हूँ, लेकिन स्नेह और सम्मान में फर्क है। सम्मान उसका भी किया जा सकता है, जिसके प्रति मन में तनिक भी स्नेह नहीं। लेकिन जिसके प्रति सम्मान नहीं, उसे स्नेह नहीं किया जा सकता। बड़े आदमी का सम्मान करना हमारी सभ्यता है, जबकि गुरु जनों की श्रद्धा करना हमारी संस्कृति है। स्नेह तो प्यार की अंगुली बन कर, जीवन भर साथ निभाने की वस्तु है। सो जिसे तुमने श्रद्धा की ऊंचाई दी, उसे सम्मान के निचले धरातल तक उतारने में क्या तुक है।

मित्र मेरे—मैंने सुना है, कि तुम्हारे द्वारा जगह जगह मानस के पाठ का आयोजन किया जाने वाला है। यह सब मन से नहीं वरन् एक शासकीय कार्य-क्रम का अनिवार्य अंग होगा। और तुम तो जानते ही हो, कि जिस काम में मन का योग नहीं होता वह अपना असर खो बैठता है। शायद तुम्हें पता नहीं होगा, कि मेरा मन इतना संवेदन शील रहा है, कि जहां भी राम का नाम सुनता हूँ, मेरी आंखें झरने लगती हैं, ऐसे संवेदनशील मन को, महज यांत्रिक आवृति के माध्यम से चोट पहुंचाने में तुम्हें क्या मिलेगा।

मित्र मेरे—राम के साथ मेरे मन का जो योग सदा है, वह इसलिए कि उनके और मेरे मन की एक जैसी स्थिति रही है। जन्म से ही मुझे माता पिता के द्वारा त्याग दिया गया। मेरे प्रभु का जीवन भी तो, बचपन में विश्वमित्र के द्वारा मांग कर ले जाने की वस्तु थी। जिस पत्नी को मैंने असीम प्यार

किया, उसी का मुझे परित्याग करना पड़ा। मेरे प्रभु के जीवन में भी तो पत्नी के विरह से व्याकुल, "क्रौंच पक्षी" को पंखों की फड़फड़ाहट सुनी जा सकती है। कौन जानता है, क्रौंच के माध्यम से राम की कथा लिखने वाले, वाल्मीकि के जीवन में भी, अपने परिवार से टूटकर भटकने वाले, ऐसे हो किसी पक्षी की व्यथा समाई हो। कहते हैं,: महाकाव्यों का जन्म व्यथा में से होता है। अपने परिवार को सबसे अधिक प्यार करने वाले तथा उसके लिए डाकू तक बनने वाले व्यक्ति को उसी परिवार की ताड़ना ने यदि युग-युग का वाल्मीकि बना दिया, तो अपनी पत्नी को सबसे अधिक प्यार करने वाले, और उसके लिखे परमेश्वर को भी भूल जाने वाले "रामबोला" को उसकी पत्नी की प्रताड़ना ने "तुलसी" बनाकर भारतीय मन पर चढ़ा दिया।

मित्र मेरे—मैंने सुना है, कि तुम मानस चतुश्शताब्दी वर्ष में मेरे ग्रंथों का अध्ययन कर, लोगों को यह समझाने वाले हो, कि देखो तुलसी कितना बड़ा साहित्यकार था, उसकी कृतियों में कैसा महान साहित्य समाया है। यह तो ऐसी बात हुई, कि जैसे कोई बजाय फलों का रसास्वादन करने के उन्हें चीर फाड़ कर लोगों को यह समझाये कि इनमें कितना रूप रस और सौन्दर्य भरा पड़ा है। जिस "विनय पत्रिका" में मैंने मानव मन की सम्पूर्ण व्यथा को संजोया है, उसकी भावनाओं से आत्मसात होकर यदि तुम उसे पढ़ सको, तो तुम्हें लगेगा, कि उसमें मेरे ही नहीं, तुम्हारे मन की भी व्यथा कथा, अपने प्रभु के नाम पाती के रूप में संजोई है।

मित्र मेरे—मेरे प्रति तुम्हारे मन में जो प्यार है, वह रामचरित मानस के रचियता होने के नाते है, लेकिन इसमें मेरा तो कुछ भी नहीं है, भगवान राम का चरित स्वयं इतना उदात्त है, कि चाहे वाल्मीकि हो या लोकगीतकार जिसने भी उसका वर्णन किया, जनमत में अपना अमिट स्थान बना लिया है।

लेकिन बहुत सोचने पर भी एक बात मैं समझ नहीं पाता, कि जिस प्रभु की मैंने उपासना की उसके बजाय, जिसके ग्रंथ के माध्यम से मैंने प्रार्थना की, उसकी शताब्दी मनाना कहां तक न्याय संगत है। यह तो ऐसी बात हुई कि कोई बजाय लक्ष्य के लक्ष्य तक पहुँचाने वाले मार्ग को प्रणाम करे। अच्छा होता यदि यह शताब्दी तुममें बजाये मानस के, रामचरित को जीवन में उतारने की याद जगा जाती।

———

स्वाभिमान

—रामनारायण उपाध्याय

कभी कभी
मेरे कर्त्तव्य के मार्ग में,
स्वाभिमान आकर खड़ा हो जाता है।
कहता है
मैंने तुम्हारी हर बात मानी
मेरा भी तो ख्याल रखा करो।
मैं उसे समझाता हूँ,
अगर मैं तुम्हारी बात मानूं
तो अपने कर्त्तव्य से च्युत होता हूँ।
लेकिन अगर मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करता हूँ,
तो उस में से एक नये स्वाभिमान का जन्म होता है
जो तुमसे कहीं बड़ा है।

"मानस का हंस" रामचरित मानस के परिप्रेक्ष्य में

—भुवन पति शर्मा

अमृत लाल नागर हिन्दी के सिद्धहस्त लेखकों में से हैं और मानस हंस उनका नवीनतम उपन्यास है। तुलसीदास के जीवन को आधार बना कर लिखे गये प्रस्तुत उपन्यास में उनका उपन्यासकार का ही नहीं सहृदय पाठक और मनस्वी चिंतक का रूप भी उभरता है। स्व० रांगेय राघव ने भी एक उपन्यास "रत्ना की बात" तुलसी दास जी के जीवन को आधार बना कर लिखा है मगर नागर जी का उपन्यास बहुत कुछ तत्कालीन समस्याओं की जानकारी देते हुए भी मानसकार तुलसी के मानवीय एवं लोक संग्रही रूप को प्राथमिकता देता है रांगेय राघव के तुलसीदास का आधार दंतकथाएं और किंवदन्तियां है और लेखक ने तुलसीदास का धर्म प्रचारक रूप अधिक उभारा है पर नागर जी का उपन्यास एक बृहत्तर फलक पर तुलसी के जीवन के बारे में अनेक नई उद्‌भावनाओं को आधार बनाए है और भक्त तुलसी के क्रमिक विकास का लोकरंजक और लोक संगठक रूप प्रस्तुत करता है। निःसंकोच होकर यह कहा जा सकता है कि नागर जी का उपन्यास हिन्दी के जीवनी-परक उपन्यासों की परंपरा का एक मील पत्थर बन गया है और रोचकता तो इसमें इतनी है कि यह उनके ही एक अन्य उपन्यास एकदा नैमिषारण्ये से इक्कीस ही पड़ता है उन्नीस नहीं। 'रत्ना की बात' और 'मानस का हंस' में कुछ समानताएं होते हुए भी नागर जी का उपन्यास अपने व्यापक आधार और रोचकता के कारण रांगेय जी के उपन्यास से कहीं अधिक स्वाभाविक और प्रभावी है।

पूरा का पूरा उपन्यास मार्मिक और हृदय स्पर्शी प्रसंगों से भरा पड़ा है। उपन्यास में Flash Back की तकनीक का उपयोग किया गया है और एक वर्ष की अवधि में फैला यह उपन्यास मृत्यु से आरंभ होकर मृत्यु पर ही समाप्त होता है। तुलसीदास अपनी पत्नी रत्ना के अन्तिम समय में पधारते हैं और रत्ना सीता राम कहती हुई उनकी गोद में प्राण छोड़ती है। इसके बाद संत बेनीमाधव और मानस पुत्र रामू के साथ तुलसीदास एक साल की अवधि में जीवन का ब्योरा लेते देते हुए राम का नाम लेकर शरीर छोड़ देते हैं। संत बेनीमाधव उनके जीवनी-कार के रूप में घटना क्रम को प्रस्तुत से पूर्व काल में ले जाते हैं। उनके प्रश्नों के माध्यम से कथा में तारतम्य आता है और यह मृत्यु शय्या पर पड़े लेखक के पिछले जीवन का उसी के माध्यम से परिचय कराने से कहीं अधिक सुसंबद्ध एवं प्रभावी माध्यम है। "रत्ना की बात" में रांगेय राघव ने चंद्र धर शर्मा गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी "उसने कहा था" की Flash Back तकनीक का प्रयोग किया है जिसमें मरणासन्न व्यक्ति अपने जीवन का सिंहावलोकन करता है और फिर वर्तमान में आकर मर जाता है मगर मानस का हंस में संत बेनी माधव का चरित्र इसे सि[illegible] Back ही नहीं रहने देता। उसमें एक नहीं अनेक मौलिक परिवर्तन [illegible] बेनीमाधव के अपने मन: संघर्ष को वासना से उत्पीड़ित [illegible] को श्रद्धा का आधार तुलसी दास के जीवन के कुछ उन प्रसंगों से मिलता है जिनमें नागर जी ने उपन्यास कार के अधिकार का प्रयोग करते हुए शास्त्री तुलसी के काशी की वैश्या मोहनी बाई के साथ हुए प्रणय संबंधों की उद्भावना की है। इससे यह अधिक अंतरंग वास्तविक और तुलसी के प्रति बनी लोकधारणा के अधिक अनुरूप बना है जो तुलसी के चरित्र को और भी अधिक मानवीय और यथार्थ परक बनाता है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते कहीं ऐसा लगता है मानो नागर जी स्वंय ही बेनीमाधव हैं और उन्होंने यह उपन्यास लिखा नहीं है जिया है।

एक जीवनी-परक उपन्यास के मूल्यांकन का आधार यह होता है कि व्यक्ति के जीवन को उसके सामाजिक संदर्भों में प्रस्तुत किया जाये। "मानस का हंस" इस प्रकार के जीवनी-परक उपन्यास का एक सुन्दर उदाहरण है जिसमें नागर जी ने तत्कालीन सामाजिक संरचना का विश्लेषण करते हुए आधुनिक जीवन का भी चित्रण किया है। राजनैतिक अव्यवस्था, मठों का अनाचार अंधविश्वास दुर्भिक्ष और अन्य समस्याओं पर उन्होंने जो विचार व्यक्त किये हैं वे बड़े ही सटीक और उपयुक्त हैं। नागर जी ने अपने विषय के साथ न्याय किया है इस बारे में दो मत नहीं हैं।

मानस का हंस अमृत लाल नागर जी की रामचरित मानस के प्रति नवीन दृष्टि का परिचायक है। रत्ना की मधुर स्मृति में खोए तुलसी अपने लिखे को नकारते नहीं हां इतना अवश्य कहते हैं कि यह कथा प्रसंग में आए पात्रों के विचार हैं। रत्ना के उनकी गोद में सीता राम कह प्राण छोड़ने के बाद श्मशान में लोग चर्चा करते हैं और एक कहता है "शूद्र गंवार ढोल पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी" यह उनकी ही पंक्ति है मगर रात को विश्राम करते समय तुलसी को लगता है मानो रत्ना स्वयं उलाहना दे रही है "नारी निन्दक" और यहां नागर जी की मौलिक दृष्टि उभरती है। प्रस्तुत वार्तालाप में जोकि तुलसी दास जी के अपने मन में ही चलता है।

तुम मुझे भला क्यों रखोगे "नारी निन्दक ?"

"कौन कहता है"

सारा जग

पर क्या यह सत्य है

"शूद्र गंवार ढोल पशु नारी ...."

"मात्र यही क्यों और भी अनेक वाक्य हैं पर वे कथा प्रसंग में आए हुए पात्रों के विचार हैं"

और तुम्हारे

जिनके श्री चरणों में मेरी आसक्ति है उन्हीं के श्री मुख से वे विचार भी प्रकट हुए हैं। तुम्हारे विरह और प्रेम के उद्गार इतने शुद्ध थे कि वे राम के उद्गार बनकर जानकी माता को अर्पित हो गये।

देखहुँ तात बसंत सुहावा।
प्रिया हीन मोहि भय उपजावा।।

"देखहुँ" शब्द की ध्वनि मात्र से नया बिम्ब जाग्रत हो उठता है। वन में तापस राम तुलसी के शब्दों में लक्ष्मण से कह रहे हैं

लछिमन देखत काम अनीका।
रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका।।

एहि के एक परम बल नारी।
तेहिं ते उबर सुभट सोई भारी ।।

"उबर कर अपना पल्ला तो छुड़ा लिया मुझ से, फिर मैं कहां ?"

'तुम्हारो वासना से उबरा किन्तु तुम्हारे प्रेम में डूब गया और ऐसा डूबा कि······"

"पता ही न चल।"

"प्रेम हो और पता न चले ?" अशोक वाटिका में राम विरहिणी सीता के पास हनुमान श्री राम का संदेश ले कर पहुंचते हैं, हनुमान के हृदय में खड़े राम अशोक वन में बैठी सीता को देख रहे हैं और कपि कह रहे हैं।

कहेउ राम वियोग तब सीता। मोकहं सकल भये विपरीता।
नवतरू किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा समनिसि ससि भानू।
कुवलय विपिन कुंत बन सरिसा। वारिद तपत तेल जनु बरिसा।
जे हित रहे करत तेई पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा।
कहेहु ते कछु दुख घटि होई। काहि कहहुं जह जान न कोई।
तत्व प्रेम करि मम अरू तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के जोवन का हो नहीं उनके विचारों का भी एक नया रूप उभरता है। मानस के तुलसीदास की अडिग श्रद्धा का एक उदाहरण पृष्ट ५४ पर है जहां वे रामायण से उद्धरण देते हुए कहते हैं

"राम राम रटते ही मैंने दुखों के पहाड़ झेले हैं "अपना पराया दुख देखता हूँ तो मन अवश्य ही भर उठता है पर उस कोमलता में भो मेरी सहन शक्ति राम के सहारे ही अडिग रहती है।······

आपनें तो एक अवलम्बु अंब डिंभ ज्यों
समर्थ सीता नाथ सब संकट बिमोच है।
तुलसी की साहसी सराहिये कृपाल राम
नाम के भरोसे परिनाम को निसोच है ।।

जन्म लेते ही जिसे घर से निकाल दिया गया और माता पिता के स्नेह की छाया से दूर बालक राम बोला के बाल्य जीवन के कुछ मर्म स्पर्शी चित्र

मानस का हंस में मिलते हैं। बालक का स्वाभिमान भोलापन और बजरंगबली पर अमित विश्वास कथा के अत्यंत रोचक प्रसंगों में से हैं।

"देख लियौ हनुमान स्वामी, अरे ललकऊ सरदार बड़े बीर हैं, औ तुम देख लेना ललकऊ अब किसो को यहां पैर तक न रखने देगा। ललकउ सुना हनुमान स्वामो क्या कह रहे हैं। अब यहां कोई न आने पावे। परसों राजा के घर चलेंगे। मजे से माल उड़ाना। हम? नहीं हम तो नहीं जाएंगे भाई। हमें न्योता कहां मिला है फिर बिना बुलाए हम किसो के घर क्यां जाएं राजा होंगे तो अपने घर के होंगे। हमारे राजा राम चंद्र से बड़े तो नहीं। अरे, हमारे हनुमान स्वामी आज ही जा के राम जो से कहेंगे कि राम जी, राम जो तुम्हारा राम बोलवा कल से भूखा है। उसे ऐसी कस के भूख लगी है कि तुम उसे खाने को न दोगे तो वह रो पड़ेगा।"

इस प्रकार का सरल भोला पर आत्माभिमानी बालक नरहरी बाबा और गुरु शेष सनातन के संपर्क में आकर कैशार्य्य एव तारुण्य के सोपान पार करता जाता है जिसमें वह भूतों से जूझता है अमावस्या की रात को श्मशान में जा शंखनाद करता है और हनुमान चालीसा बनाता है अब शास्त्री बनकर पूर्ण यौवन में आ जाता है और यहां अमृत लाल नागर को तुलसी चरित्र के बारे में एक और मौलिक उदभावना सामने आती है। काशी की वेश्या मोहनो बाई के साथ प्रणय संबंधों की कल्पना। यह एक जीवना-परक उपन्यास है और नागर जी ने मानसतर तुलसी साहित्य का गहन अवगाहन करके "तन तरफत तुव मिलन बिन" दोहों के आधार पर तरुणा शब्द को प्रमुखता देते हुए अपनी कल्पना को एक पुष्ट आधार दिया है। भूमिका में उन्होंने कहा भी है "मुझे लगता है तुलसा ने काम से हो जूझ २ कर राम बनाया है।" मगर इस सारे घटना क्रम में तुलसीदास और भी उज्जवल रूप से सामने आते हैं। मानवोय और यर्थाथ चित्रण का सुन्दर उदाहरण है। प्रलोभनों से जूझ कर ही अपनी वासनाओं को रामोन्मुख कर के ही तुलसी तुलसी बने। बेनी माधव के अंतद्वन्द्व को तुलसी पहचानते हैं यह उनका अपना भोगा हुआ यर्थाथ है न। उन्होंने हर अनुभव से रामभक्ति की लौ को प्रखर किया और तप कर कुंदन बने। अनन्य लगन और आस्था का संदेश उन्हें नंददास से मोहनी की घटना से और अन्य घटनाओं से मिला और हर घटना में उनका मन राम के सहारे जीतता गया।

राम चरित मानस की कुछ चौपाइयों का तुलसी के जीवन को रत्नावली के साथ जोड़ने का सुन्दर प्रयास मानस का हंस के पृष्ठ २४४-४५ पर है

"और मेरा तुम्हारा नाता ?"

तुलसी हस पड़े "मेरे तुम्हारे नाते कौ तो जग जानता है हम तो चाखा प्रेम रस पत्नि के उपदेस"

"मेरा द्वन्द्व आरंभ ही से ाम वासना से था। मेरी अन्तर-वाह्य चेतना भीतर वाले काम हठ से अपने राम हठ को श्रेष्ठ मानतो थी। मैंने उसे ही जीतना चाहा था पर तुमने ऐसा भरमाया कि क्या कहूँ"

"मेरा हठ बढ़ता जाता था कि तुम्हें पाकर ही रहूंगी तुम जानते हो मैं नित्य गौरी पूजन करने गांव के मंदिर में जाने लगी थी।"

तुलसी मुस्कराए—"और तुम जानती हो मैंने तुम्हें सखियों के साथ मदिर जाते देखा था। तुम्हारी उस छवि पर ऐसा मुग्ध हुआ कि राम जानकी का पुष्प वाटिका में प्रथम मिलन वर्णन करते समय वह मंदिर और उसके पास वाले सरोवर तक को न भूल सका तुम्हारी तो बात ही न्यारी थी......

संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी।
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाई देखि मन मोहा।
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता।

"अपना आपा बिसार कर रीझना मैंने तुम्ही से सीखा है। तुम्हारा बखाना मेरा दर्प ही मेरा शत्रु बना।"

"जिस दर्प ने मुझे रामदास बनने का गौरव और तुम्हें भक्ति का प्रसाद दिया उसे बुरा न कहो रत्ना। पीड़ा के विना शक्ति का जन्म नहीं होता।" इस प्रकार जहां कहीं भी तुलसी अपने मन को परखते हैं रत्ना वहां आ जाती है और आत्म-विश्लेषण की इन घड़ियों में नागर जी की सहायता के लिये राम चरित मानस सदा सहायक रहा है। जहां भी तुलसी और रत्ना का प्रसंग आया है वहां मानस के दृश्य और दोहे मणि माणिक्यों की तरह जगमगा उठते हैं।

अब समग्र रुप से राम चरित मानस के बारे में नागर जी का दृष्टिकोण क्या रहा है इसे समझने के लिये "मानस का हंस" के ३६७-६८ पृष्ठ का अवगाहन करना होगा।

बेनीमाधव पूछते हैं कि "जीवन चरित लिखते समय आप पात्र अथवा पात्री की कल्पना कैसे करते थे। राम कथा रचते समय आपके पास एक भी

ऐसा पात्र नहीं था जिसे आपने मेरे समान प्रत्यक्ष देखा और भोगा हो फिर उनके भाव चित्रों को ·····।" तुलसीदास जी के उत्तर में मानो नागर जी का अपना स्वर मुखरित हो उठता है "क्या बचपने का प्रश्न करते हो बेनीमाधव मैंने अपने राम को तुम्हारे तुलसीदास से कहीं अधिक प्रत्यक्ष देखा है। मानस रचते समय जिस ललक के साथ अपने जीवन मूल्यों के पूर्ण समुच्चय स्वरूप श्रीराम की कल्पना के साथ आठों पहर तल्लीन रहता था तुम रह पाते हो क्या ? सभी पात्रों में जीवन के देखे हुए अनेक चरित्र अपनी व्यक्तिगत छाप मेरे आग्रह से अवश्य ही छोड़ते थे। मंथरा के रूप में बचपन की भिखारी बस्ती में रहने वाली कुबड़ी मौसिया की बहु बरबस अपनी चाल ढाल के साथ उभर कर आ जाती थी। कौशल्या के रूप में कहीं न कहीं सूकर खेत की बड़ी राना का चरित्र मन में आ जाता था।

इस प्रकार जीवन में देखे सुने अनेक दृश्य और चरित्र राम चरित मानस की रचना में घुलमिल जाते थे।

"भरत के चरित्र में स्वयं आप हैं ?"

अरे भई जहां राम-पद-वंदन का छोटा सा अवसर भी मिलता था मैं वहीं अपने को रमा देता था। भरत में, लक्ष्मण में, हनुमान अत्रि जटायु शिव शबरी प्रत्येक पात्र या पात्री के रामलीन क्षणों में तुलसी अवश्य हैं। श्रीराम के अयोध्या त्याग के चित्रों की पृष्ठ भूमि में मेरे अपने गृह त्याग की पीड़ा भी कहीं पर समाई है। सीता के विरह में, राम की मनोदशा के चित्रण में कहीं न कहीं मैं अपनी रत्नावली के साथ समा ही गया हूँ।"

इसके बाद नागर जी उदाहरण देते हैं किस प्रकार मेघा भगत की मरनासन्न दशा का चित्रण मेघनाद वध प्रसंग में है। लक्ष्मण के प्रति विलाप करते समय राम के वे भाव मेरे विकल क्षणों से ही उमगे थे। वह तो अवतारी पुरुषों की कथा थी। लक्ष्मण जी बच गये मगर मेधा भगत चले गये।

इस प्रकार तुलसीदास जी के माध्यम से मानस की रचना प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए अमृतलाल नागर जी का मनस्वी चिंतक का रूप उभरता है। इतने उदाहरणों में उनकी भाषा शैली का परिचय तो मिल ही गया है इतना ही कहा जा सकता है कि भाषा चुस्त पात्रानुकूल और गतिशील है। इसमें एक प्रकार की अंतरंगता और अपना-पन है। हर समय यह लगता है

मानो नागर जी सामनें खड़े होकर बात कर रहे हों। ४४१ पृष्ठ के इस विशाल उपन्यास में उनका मानस मंथन बड़ी स्पष्टता से उभरा है और तुलसी दास जी के जीवन से तादात्म्य साध कर जिस कुशलता से समूचे उपन्यास में उन्होंने अपने किस्सागो का सुधी चिंतक और विश्लेषक से समन्वय किया है वह इसे जीवनी-परक उपन्यासों की परम्परा में अमर रखेगा। सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों का विश्लेषण ही नहीं पुनर्मूल्यांकन भी अतर्द्वन्द्व के प्रभावी चित्र और सबसे उपर एक अडिग आस्था का संदेश इस उपन्यास की स्थाई उपलब्धियां हैं और प्रस्तुत लेख में मात्र मानस को ही आधार बना कर मानस के प्रति नागर जी की दृष्टि और तुलसीदास जी के जीवन में मानस के पदों की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास है। इसके औपन्यासिक मूल्यांकन के और भी अनेक क्षेत्र हैं। यह तो उसके एक पक्ष को देखने का प्रयास मात्र है।

मानस का हंस (उपन्यास) ले. अमृत लाल नागर
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली मूल्य २५/- रु.

राम कथा की लोकप्रियता एवं विभिन्न देशीयता

—शम्भु नाथ शर्मा

अतिक्रान्त काल की बांकी झांकी प्रस्तुत करने वाला कबि रम्यनिर्माण-शाली प्रजापति के समान होता है।[1] कहते हैं—कि काल की महती शक्ति होती है जो विश्व के प्रत्येक पदार्थ का रूप परिणत कर देती है किन्तु कालचक्र की गति को भी थाम लेने वाला कवि सशक्त क्रान्तदर्शी होता है।[2] महाकवि बिल्हण के शब्दों में 'रावण का यश अगर सङ्कुचित हुआ, अथवा राम जो कीर्ति का पात्र बना, यह सारा आदि कवि वाल्मीकि का ही प्रभाव है, इसलिये कवि को कभी नाराज नहीं करना चाहिए'' ।[3]

राम चरित की उज्ज्वलता, उदात्तता एवं लोकप्रियता को यावच्चन्द्र-दिवाकरी स्थिर करने वाले वाल्मीकि ही आदि कवि हैं और बाद में लिखित राम-कथाओं के आदि स्रोत हैं। धम का मनोरम स्वरूप, समाज-कल्याण की उदात्त कल्पना, जन-जोवन की रूपरेखा, राज्यशासन का आदर्श—ये सब ऐसो

१. कल्हण कृत राजतरङ्गिनी १.४ और भी देखिए १.३ तथा १.७

२. इस सम्बन्ध में देखिए मेरा लेख—'कवि की महिमा' विश्व-ज्योति सितम्बर १९७० के अंक में प्रकाशित

३. विक्रमाङ्कदेवचरितम् प्रथम सर्ग से—
लङ्कापतेःसङ्कुचितं यशोयत्, यत्कीर्तिपात्रं रघुराज पुत्रः।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावः, न कोपनीयाः कवयो नरेन्द्रैः ।।

संभावनाएं हैं जिन के कारण राम कथा स्वदेश की सीमाओं को लांघ कर सुदूर पूर्व के देशों में भी फैल गई। महात्मा गांधी ने राम-कथा की आदर्श-कल्पना से ही प्रेरणा पाकर भारत में रामराज्य की कामना की थी।[४] राजा के मुख्य कर्तव्य हैं :—

(क) लोगों को रक्षा करना,

(ख) उनको शिक्षा देना, तथा

(ग) उनकी जीविका के साधन प्रस्तुत करना,[५]

जिस राज्य में ये बातें हों वही आदर्श राज्य कहा जा सकता है। यही आदर्श कल्पना हमें राम-कथा में मिलती है।[६] राम की कथा मानव जीवन की कहानी है, जिसे तुलसीदास ने अत्यन्त मनोहर व आकर्षक रूप में अपनी भाषा अवधी में खूब संवारा है। यह राम-कथा प्रतिपल हमारे जीवन में चलती रहती है। दुनिया की ऐसी कौन सी प्रमुख भाषा है, जिसमें राम-कथा न हो। यह भाषा, देश, जाति, धर्म और समय की सीमाओं को लांघकर, युग-युग के संख्यातीत नर-नारियों के हृदय में स्थान बनाती चली गई है। यह केवल जैन, बौद्ध और सनातन धर्मियों की ही नहीं, एशियाई मुसलमानों की भी है। लोकप्रियता के चरमोत्कर्ष पर स्थित 'राम-लीला' भारत से लेकर इंडोनेशिया तक प्रचलित है। विविध परिधानों एवं अलंकारों से सज कर आज भी बाली, जावा आदि द्वीपों के नर-नारी राम-लीला करते हैं। इन द्वीपों में ये नाट्यलीलायें बड़ी पुरानी हैं। पूर्व-मध्यकाल में धनपाल द्वारा लिखित 'तिलक मंजरी' में उल्लेख है कि इन द्वीपों में होने वाली धार्मिक लीलायें देखने के लिये अठारह द्वीपों के लोग एकत्रित हुआ करते थे।[७] इन सांध्य नृत्यलीलाओं की इतनी

---

४. देखिए मेरा लेख :—'राम-राज्य' 'विश्वज्योति' अंक जून-जुलाई १९७१

५. तु० प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता ---...... .. .. ॥ रघुवंशम् १.२४

६. विशेष के लिये देखिए मेरा लेख—'राम-राज्य'

७. तिलक-मंजरी, निर्णयसागर संस्करण, पृष्ठ ५४
उन्नतप्रासादशिखरचन्द्रशालायां रचितरङ्गभूमिखसरेषु,
द्रष्टुमागतानामष्टादशद्वीपमेदिनीपतीनां दर्शयति दिव्यं
प्रेक्षाविधिम्।

प्रसिद्धि थी कि सुदूर अयोध्या की रानी मदिरावती को दोहद-इच्छा हुई कि सागर के पार स्थित देवमन्दिरों के इस प्रेक्षा-नृत्य को देखा जाये।[८]

हिन्द चीन तथा हिन्देशिया के अनेक भागों में भारतीय बस्तियां बस चुकी थीं। यूनानी भूगोल लेखक टॉलमी के वर्णन से ज्ञात होता है कि ई० दूसरी शताब्दी तक ताम्रलिप्ति (तमलुक, जि० मिदनापुर, बंगाल) के पूर्व से लेकर तोंकिन की खाड़ी तक भारतीय लोग बस गये थे। वह अपने साथ भारतीय परंपरायें एवं राम-कथा भी साथ ले गये होंगे।

राम-कथा का प्रचार-प्रसार विदेशों में खूब बढ़ा है किन्तु साथ ही साथ इसके स्वरूप में पर्याप्त अन्तर भी पड़ता चला गया है। विदेशों में जिस प्रकार की राम-कथा की विशेषता पाई जाती है उसे जानना भी रुचिकर होगा।

लंका—में प्रचलित राम-कथा 'पदम चरित' कहलाती है। इसमें हनुमान के जन्म में विचित्रता पाई जाती है। जिस के अनुसार आदित्यपुर का राजकुमार पवनजय महेन्द्रपुर की राजकुमारी अंजना से शादी करके, रावण की तरफ से वरुण के साथ युद्ध करने जाता है। वापसी पर अंजनी को गर्भवती पाकर परित्याग कर देता है। अंजनी एक बालक को एक गुफा में जन्म देती है जिसे प्रतिपर्य नाम का राजा पालता है। इस बालक का नाम हनुमान् रखा जाता है। बाद पवनजय अपनी भूल सुधार कर अजनी को वापस ले लेता है। सेतुबन्ध के विषय में बताया गया है कि समुद्र नाम का एक राजा था जिसे नल ने युद्ध में हराया और इस तरह राम की सेना उसके राज्य से होकर लंका पहुंचती है।

श्याम—में प्रचलित राम-कथा हिन्देशिया की कथा से मेल खाती है। यहां इसे 'राम कियेन' कहा जाता है। इस में (क) लक्ष्मण और हनुमान् का युद्ध भी दिखाया है।

(ख) सेतुबन्ध से पूर्व रावण ब्राह्मण के रूप में राम के पास जाकर युद्ध स्थगित करने का प्रस्ताव करता है।

(ग) विभीषण की पुत्री 'बेंजकाया' सीता का रूप धारण कर समुद्र में बह जाती है।

---

८. वही० पृ० ७५ विबुधवृन्दपरिवृता शाश्वतेषु सागरान्तद्वीप-सिद्धायतनेषु सांध्यमारब्धमप्सरोभिः प्रेक्षानृत्यमीक्षितुमकांक्षत्।

(घ) रावण ब्रह्मा के पास जाकर राम पर नालिश करता है।

(ङ) रावण के मरने पर उसका एक पुत्र विभीषण के विरुद्ध विद्रोह करके भरत के द्वारा मारा गया दिखाया गया है।

(च) और सब से मज़ेदार बात यह है कि हनुमान् को बेंजकाया, नागकन्या, और मंदोंदरी से इश्क करता हुआ दिखाया गया है।

बर्मा—में सन् १८०० में एक वृहत् संकलन हुआ जिस का नाम 'राम यागन' है। असल में ११९७ ई० में बर्मा के तत्कालीन शासक ने श्याम पर आक्रमण किया था और वहां से वहुत से बन्दी लाये गये थे जिन्होंने राम-कथा सम्बन्धी लीलाओं का श्रीगणेश किया। श्याम की राम-कथा ही बर्मा में प्रचलित है। अन्तर केवल इतना है कि यहां शूर्पणखा जिस का नाम 'गाम्बी' है मृग का रूप धारण कर राम को दूर ले जाती है और राम के तीर से आहत होने पर अपना असल रूप प्रकट करती है और मर जाती है।

लाओस—में प्रचलित राम-कथा 'पंचतन्त्र' में राम को रावण का चचेरा भाई बताया गया है। इसमें राम के केवल एक भाई लक्ष्मण का उल्लेख है। इस रामचरित की उल्लेखनीय बात यह है कि राम वनवास में दो स्त्रियों से विवाह करते हैं जिनसे हनुमान् और घोग्राफ दो पुत्र होते हैं। बौद्ध जातक में दशरथ शुद्धोदन का, राम बुद्ध का, लक्ष्मण आनंद का, रावण देवदत्त का, और सीता को उप्पलवणसग का अवतार माना गया है। वैसो ही कल्पना इस रामायण में भी मिलती है।

तिब्बत—में प्रचलित राम-कथा में, सीता-त्याग, राम का सीता से मिलन और रावण चरित्र का वर्णन मिलता है। इसमें यह कहा गया है कि राम विष्णु के अवतार हैं। दशरथ की दो ही पत्नियों का उल्लेख है। विष्णु प्रथम पत्नी 'कनिष्ठा' से और लक्ष्मण दूसरी पत्नी 'ज्येष्ठा' से जन्म लेते हैं। विष्णु का नाम राम न होकर रामन है। इसमें कथा ऐसे है कि रावण की पत्नी मंदोदरी के गर्भ से एक लड़की का जन्म होता है। जब ज्योतिषियों को ग्रह देखने के लिये कहा गया तो उन्होंने इस लड़की को कुलक्षणा बताया। अतः इसे समुद्र में फेंक दिया जाता है जिसे एक कृषक पा लेता है और पालता है इसी का नाम सीता रखा जाता है। दूसरी तरफ राजा दशरथ किंकर्तव्यविमूढ हैं कि राम और लक्ष्मण में से राज्य किसको दिया जाय। इस बात से क्षुब्ध होकर

राम स्वेच्छा से तपस्या करने के लिये जंगल में चला जाता है और वहां प॰ कृषक के अनुरोध पर उसकी पालित बेटी सीता से शादी करता है। राम के जंगल चले जाने पर गद्दी लक्ष्मण को मिलती है। और फिर शादी करके राम भी नगर वापिस आ जाता है। इस प्रकार राम की शादी रावण की बेटी से वर्णित है। इसका मुख्य आधार है प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ - अनामकं जातकम्, तथा दशरथ-जातकम्। इन्हीं का चीनी भाषा में लगभग ई० तीसरी और पांचवी शती में अनुवाद हुआ था।

पूर्वी तुर्किस्तान—में प्रचलित राम-कथा को 'खोतानी' कहते हैं। यहां बुद्ध को राम कहा गया हैं। इस की कथा भी विचित्र है—दशरथ के पुत्र का नाम सहस्रबाहु है, जो परशुराम के पिता की गाय—कामधेनु को चुरा लेता है। इसी कारण परशुराम सहस्रबा को मार डालता है। सहस्रबाहु के दो पुत्र हैं—राम और लक्ष्मण। वे दोनों युवा होने पर अपने पिता के वध का बदला परशुराम से लेते हैं। इस कथा में राम के वनवास का कोई कारण नहीं दिया गया है। इतना ही मिलता है कि राम और लक्ष्मण सीता से विवाह करते हैं। वन-वास के प्रसंग में लक्ष्मण द्वारा खींची हुई रेखा का वर्णन भी आता है। शेष कथा चीनी-रामायण जैसी ही है।

हिन्देशिया—में प्रचलित राम-कथा वाल्मीकि कृत रामायण जैसी ही है कहीं २ पर भिन्नता भी मिलती है। यहां का संस्करण 'काकाविन' कहलाता है जिसे योगीश्वर ने बनाया है। इसकी विशेषता यह है –

१. राम हनुमान् के द्वारा सीता को पत्र भेजते हैं, अंगूठी नहीं। सीता भी पत्रोत्तर ही देती है, चूड़ामणि नहीं।

२. शबरी अपनी कथा राम को सुनाते हुए कहती है कि विष्णु ने वराहावतार में मेरी माला खाई थी और मर गये थे। मैंने विष्णु का शव खा लिया जिससे मेरा मुख काला पड़ गया है। इस लिये राम से प्रार्थना करती है कि मेरा मुख पोंछ कर शुद्ध कर दो।

३. मेघनाद की सात पत्नियां थीं जो लक्ष्मण के हाथ युद्ध में मारी जाती हैं।

मलाया—में प्रचलित राम-कथा का नाम है—'हिकायत सेरी राम'। यह लगभग १६वीं शताब्दी की रचना मानी जाती है। इसकी कहानी भारतीय

रामायण से एकदम भिन्न है। कथा इस प्रकार है—राजा दशरथ की दो रानियां हैं—मंदोदरी और बलियादरी। दशरथ पुत्र-प्राप्ति के लिये अनुष्ठान करते हैं जिसमें देवताओं द्वारा बलियादरी को खीर मिलती है जिसका कुछ भाग एक कौआ झपट कर लंका की ओर उड़ जाता है। दशरथ के चार पुत्र होते हैं—राम, लक्ष्मण, वर्दन और चित्रदन। एक पुत्री होती है जिसका नाम 'किकवी है। छोटी रानी बलियादरी के इशारे पर दशरथ राम को वनवास और वर्दन को राज-गद्दी देते हैं। राम वन में कुश घास से पांच पुत्र और सात लड़कियां पैदा करते हैं। यहां पर हनुमान् को राम का पुत्र, और सुग्रीव को गौतमपत्नी अहल्या का बेटा बताया गया है।

दूसरी तरफ, रावण अपने दुर्व्यवहार के कारण पिता द्वारा निष्कासित होता है सिंहल में एक नगर बसाता है। रावण, फिर, कुम्भकर्ण को अपना विभीषण का राज-ज्योतिषी, और शूर्पणखा के पति बर्गासींगा को सेनापति गुप्तचर के रूप में नियुक्त करता है।

लक्ष्मण शूर्पणखा के पुत्र दर्सासींगा को मार डालता है और शूर्पणखा को अपमानित करता है। वह रावण से शिकायत करती हैं। राम-रावण युद्ध होता है। रावण के ग्यारह सिर हैं। ग्यारहवें मस्तक पर बाण लगने से उसकी मौत होती है। विभीषण को राज्य मिलता है और उसकी शादी राम की बहिन किकवी से होती है। राम सीता का परित्याग इसलिये कर देते हैं कि उसने ताड़ के पत्ते पर रावण का चित्र बनाया था। फिर लव और कुश से युद्ध होने का वर्णन है। लव और कुश का एवं वानरी सेना का राक्षसियों के साथ विवाह का वर्णन भी मिलता है।

जावा—में प्रचलित राम-कथा 'सेरत राम' कहलाती है। यह वाल्मीकि रामायण से मिलती जुलती है। इस कथा को विचित्रता है—

१. सीता की दी हुई अंगूठी को जटायु राम को देता है।
२. दशरथ की पुत्री का परिचय यहां दिया गया है।
३. सुग्रीव के दुःख के आंसुओं का पानी लक्ष्मण के तरकश में जमा होने की बात, और इसी तरह किष्किन्धा में सुग्रीव को ढूंढने का वृत्तान्त भी मिलता है। यहां नवीं शती में परंबनं के स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव के मन्दिरों का भव्य निर्माण हुआ। शिव-मन्दिर में राम-कथा का सुन्दर चित्रण मिलता है।

कम्बोडिया—में ईसा की दसवीं शताब्दी में भारतीय राज्य की शक्ति बढ़ी। वहां के राजा जयवर्मा पंचम ने हिन्दु धर्म का खूब प्रसार किया। १११३ ई० में सूर्यवर्मा द्वितीय ने राजधानी में अंगोरकोट का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया, जो स्थापत्य और मूर्तिकला का एक श्रेष्ठ नमूना है। इसमें राम-कथा अंकित है। शिलापट्ट पर राम-जन्म, सीता स्वयम्वर, वनवास, सीतापहरण राम-रावण युद्ध, राज्याभिषेक आदि घटनायें बड़ी सजीव सी चित्रित हैं। जावा और कम्बोडिया में चित्रित श्री राम की अमर कहानी का विस्तृत रूप में अंकन का प्राचीन शिल्प भारत में शायद ही कहीं मिलता हो। यही नहीं, इन देशों के साहित्य और संगीत में भी राम-कथा को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। दक्षिण-पूर्व एशिया के पुराने साहित्य में राम-कथा के अनेक रूप मिलते हैं, जिनसे वहां के लोग प्रेरणा तथा आनन्द प्राप्त करते हैं।

कम्बोडिया में प्रचलित राम-कथा का नाम 'रेयाम केरा' है। इसकी विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(क) विश्वामित्र के यज्ञ में, राम-लक्ष्मण ताड़का-वध न कर, विश्वामित्र से प्राप्त बाणों से एक असुर का वध करते हैं, जिसका स्वरूप कारा का था।

(ख) यमुना में बह रहे एक बेड़े पर से जनक ने सीता को पाया।

(ग) यहां पर भी सीता-परित्याग का कारण मलाया की राम-कथा के समान ही है। वह रावण का चित्र ताड़ के पत्ते पर बनाती है।

(घ) सीता बुलाये जाने पर भी अयोध्या आने से इन्कार करती हुई कहती है कि अब राम के मरने पर ही वापिस लौटुंगी। श्रीराम हनुमान् के द्वारा अपने मरने का मिथ्या समाचार देते हैं। यह सुन कर सीता लौटती है और मूर्छित हो जाती है। श्रीराम उसे गोद में लेकर आंसु पोंछते हुए होश में लाते हैं। चेतना पाकर सीता राम की भर्त्सना करती है, और धरती में समा जाती है।

विदेशों में राम-कथा की लोकप्रियता हमारे लिये गौरव का विषय है। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और हमारे लिये आदर्श स्वरूप है। हम उनकी वन्दना करते हैं और उनसे प्रेरणा एवं स्फूर्ति की कामना करते हैं।

डोगरी लोकगीतों में राम कथा

—डा० वेद कुमारी

रामकथा हज़ारों बरसों से भारत के लोक जीवन का अंग बन चुकी है। एक ओर तो संस्कृत तथा प्राकृतों के साहित्यकारों ने राम कथा के आधार पर अनेक काव्यों, महाकाव्यों तथा रूपकों की रचना की है जो शिष्ट साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं, तथा दूसरी ओर जन भाषाओं के जन-कवियों ने जन साधारण के भावों को अभिव्यक्ति के लिए भी राम कथा का सहारा लिया है। भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोकगीतों में रामायण के पात्र स्थानीय वेषभूषा से सज्जित होकर विभिन्न युगों की बदलती परिस्थितियों की कहानी कहते हैं। पुत्र जन्म के समय गाए जाने वाले गीतों में प्रायः रामजन्म की चर्चा होती है। विवाह के गीतों में राम सीता के फेरे होते हैं। कन्या के पिता राजा जनक और वर के पिता अयोध्यापति दशरथ के रूप में उपस्थित होते हैं। रामकथा से सम्बन्धित इन लोकगीतों की जड़ें तो अतीत की उन गहराइयों में हैं जहां रामायण उपजी थी परन्तु हर नये युग का बसन्त इनमें नये फूलों और नयी पत्तियों का संभार सजा देता है। इन लोकगीतों में राम, लक्ष्मण, कौशल्या एवं सीता युगानुरूप नया रूप धारण करते रहे हैं। जिस कौशल्या माता की उदारता पुत्र जन्म के अवसर पर कई लोक गीतों में सुनाई पड़ती है

(आरे कौसिला के महले राजा रामचन्द्र, सुमित्रा के लछिमन हो।
आरे कैकेई के भंरत भुआल, तीनहु घरवा सौहर हो॥
ओबरिन बोलेली कोसिला रानी, सुन राजा दशरथ हो।
ए राजा सोने के तिलरिया गढ़ाव, छेलनिया पहरावहु हो॥)

उसी कौशल्या को सामन्तवादी युग के अवशेष एक भोजपुरी लोकगीत में कठोरहृदया ठकुराइन के रूप में अंकित किया गया है। छठी के उत्सव में राजा के घर एक हिरण का वध कर दिया गया है। मंच पर बैठी रानी कौशल्या के आगे उसकी हिरणी बिनती करती है—रानी कौशल्या, मांस तो कड़ाही में पक रहा है पर कृपया हिरण का चमड़ा मुझे दे दें। मैं उसे पेड़ पर टांग कर बाहर देखती रहूँगी और मन को समझा लूंगी कि मेरा हिरण मानों अभी जीवित है। पुत्र जन्म के आनन्द में कौशल्या को हिरणी से कोई सहानुभूति नहीं। वह विरहिणी हिरणी को टका सा जवाब दे देती है "हिरणी तुम अपने घर जाओ। मैं तुमें चमड़ा नहीं दूंगी। मैं इस चमड़े से खंजड़ी मढ़ाऊंगी जिससे मेरे राम खेलेंगे"—जब जब खंजड़ी बजती है तब तब उस की आवाज सुन कर हिरणी चौंक उठती है। वह ढाक के नीचे अपने हिरण को याद करती खड़ी रह जाती है[1]। श्रीकृष्णदास ने इस लोकगीत को उस सामन्तवादी युग का दर्पण माना है जिसमें कठोर स्वार्थी जमींदार या राजा कमजोर विवश प्रजाजनं की तनिक परवाह नहीं करते थे। कौशल्या तो निरपराध हिरण के चमड़े से बनी खंजड़ी बजाते राम को देखकर फूली नहीं समाएगी पर उस अभागिनी हिरणी का दुःख कौन सुनता जिसका सौभाग्य सिन्दूर शासित वर्ग की खुशियों के लिए सदा-सदा के लिए पोंछ दिया गया। बस किसी अज्ञात जनकवि ने वह पुकार, वह बेबसी, वह पीड़ा इस लोकगीत द्वारा हम तक पहुंचा दी है।

गरीब किसानों के राम भी गरीब हैं। एक भोजपुरी गीत के अनुसार किसान राम ढेंकुली चलाते हैं और सीता जी क्यारी बनाती हैं। एक बार

---

१. मचियै बैठी कौसल्या रानी हरिनि अरज करइ
रानी मसवा त सिझहि करहिया खलरिया हमें देतेऊ
पेड़वा से टंगतिऊ खलरिया न हेरि फेरि देखतिउं
रानी देखि देखि मन समुझउतिऊं जनुक हिरण जियतई
जाहु हरिनि घर अपने खलरिया नाहीं देबई
हरिनि खलरी का खझड़ी मिढइबई त राम खेलिहंइ
जब जब बाजे खझड़िया सबद सुनि अनकइ
हरिनी ठाढि ढंकुलिया के नीचे हिरन के बिसूरइ

श्रीकृष्णदास : लोकगीतों की समाजिक व्याख्या पृ० २६

चोर उनके घर से गाय चुरा ले जाते हैं तो सीता जी रोने लगती हैं। सीता जी की ननद उन्हें समझाती हैं कि भाभी रोग्रो मत तुम्हारो आंखों का काजल बह जाएगा पर सीता उत्तर देती है कि काजल तो दो पैसे का है बाजार से मिल जाएगा पर गाय तो लाख रुपये की है कहां से आएगी ?[२]

एक किसान की पत्नी के लिए गोधन कितना बहुमूल्य होता है इसकी सूचना इस गीत में है।

एक उड़िया गीत में सीता ठकुरानी फटे पुराने वस्त्र पहने हुए है और राम टूटे हुए बर्तन में भात खा रहे हैं।[३]

चटनी के शौकीन लक्ष्मण एक बार कच्चे ग्राम लाते हैं। भौजाई सीता चटनी पीसती है पर सारी की सारी चटनो राम खा जाते हैं। लक्ष्मण आकर थोड़ी सी चटनो मांगते हैं तो पता चलता है कि वह तो खत्म हो गई। वह रोने लगते हैं।[४]

इस प्रकार के अनेक घरेलू चित्र हमें रामकथा से सम्बन्धित लोकगीतों में मिलते हैं। बालमीकि और तुलसी को पूरी राम कथा कहनी थी अतः उन्हें राम के जीवन की छोटो छोटी बातें कहने की फुरसत नहीं थो पर लोकगीतों

---

२. रामचन्द्र ढेलुको चलावे हो सीत रचेलो किआरी।

राम के घरवा में चोरवा घुसले हो, धेनु ले गइले चोराइ।
रोवेली सीता मोर भउजिया हो, काजरा झरि जाई॥
टाका हा टूकि के काजर हो, ननदी हटिये बिकाई।
लाख रुपइया के गइया हो, ननदी कहवा से आई॥

३. छिडा लगा पिंधी सीताया ठाकुराणी
दौदरा गिन्ना रे भात खाई छंति रघुमणि॥

४. अंब कसी तोली लईखन ग्रासीले
सीताया ठाकुराणी चटनी बाटोले
रघुमणि राम खाई छंति हलिया हे
टिकिए चटनी मोते देया आणी हो...सीताया ठाकुराणी
चटणी गल लईखन कांदूछंछि जे...॥

के कवियों ने रामचरित्र की इन छोटी छोटी बातों को गाकर रामायण के पात्रों को हमारे अत्यन्त निकट ला दिया है।

डोगरी लोकगीतों में राम का जन्म तथा शैशव वर्णित नहीं है। पुत्र जन्म पर गाए जाने वाले गीतों बिहाइयों में कैदखाने के भीतर कृष्ण मुरारी ही जन्म लेते हैं तथा नन्द जी के घर ही बधाई के बाजे बजते हैं। विवाह सम्बन्धी गीतों, घोड़ियों और सुहागों में राम सीता को प्रमुख स्थान मिला है।

घर में कन्या सयानी हो गई है। वह चन्दन वृक्ष की ओट में खड़ी होकर पिता से वर खोजने को प्रार्थना करती है। उसकी इच्छा है कि उसका वर रामचन्द्र हो, देवर लक्ष्मण हो, ससुर दशरथ हो और सास कौशल्या हो। वह पलंग पर बैठ कर अयोध्या का राज-सुख भोगना चाहती है। इस गीत में राम परिवार को आदर्श मान कर उसकी चाह की गई है परन्तु बनवास को दुःखद घटना का परिहार करके राज-सुखों की कामना की गई है।[५]

श्री रामचन्द्र द्वारा स्वयंवर में धनुष तोड़ने की घटना का उल्लेख भी कई डोगरी लोकगीतों में है। कन्या के पिता से कोई पूछता है "तुम्हारी बेटी के साथ कौन विवाह करेगा ?" आश्वस्त पिता उत्तर देते हैं कि रामचन्द्र जो धनुष तोड़ेंगे और वही मेरी कन्या से विवाह करेंगे।[६]

---

५. बेटी चन्दन दे ओह्‌ले ओह्‌ले की खड़ी
में तां खड़ो आ बावल जी दे पास
बावल बर लोड़िये।
बेटी केया जेया बर लोड़िये ?
वर होए सिरी राम लच्छमन देर होए,
मात कोसल्या होवै सस, सौहरा दशरथ हौए।
मैं तां मंगनियां जुध्या जी दा राज,
पंघूड़े बैठी हुकम करां॥

६. कौन ब्याहे तेरी कन्या रामा ?
कौन तोड़े तेरा धनुष रामा ?
रामचन्द्र ब्याहे मेरी कन्या रामा
सोई तोड़ै मेरा धनुष रामा।

डोगरी लोकगीत, भाग ४ पृ० १६५

एक लोकगीत में हमें सूचना मिलती है कि सीता ने स्वयंवर रचाया है जिस में भाग लेने के लिए श्री राम सजधज कर जा रहे हैं। उनका घोड़ा, पहनने के वस्त्र, आभूषण सब लाहौर से मंगवाए गये हैं। लाहौरी सामान से सजे राम जनकपुरी में जाकर धनुष उठायेंगे और सीता का वरण करेंगे।[७]

राजा जनक तो आश्वस्त हैं कि राम धनुष तोड़ लेंगे पर डोगरी लोकगीत की सीता को चिन्ता है कि छोटी सी आयु के राम से धनुष न टूटा तो उसे कुआंरी रहना पड़ जाएगा।[८]

यह चिन्ता भी "अति स्नेहः पापशंकी" होने के कारण है। बागों में उतरे राजकुमारों की सूचना सीता को सखियों ने दे दी थी।[९] दर्शन की ललचाई वह बागों में जा पहुंची जहां मुख से तो बात नहीं हुई पर नजरें मिल गईं।[१०] नयनों के उस मिलन ने ही सीता और राम दोनों को व्याकुल कर दिया है। सीता की सगाई अयोध्यापुरी में हो गई है।

जन्मभूमि जनकपुरी से विदा होने का उसे दुःख तो होगा, रो-रो कर सहेलियों तथा मां से बिछुडना होगा परन्तु अयोध्या के नगर तथा ग्रामों में जाने

---

७. चीरा ते तेरा बीरा ल्हौरी ते राम जी ने पहन के
बरनी ऐ सीता रानी क जाना शहर जनकपुरी ऐ।
सीता ने स्वम्बर रचाया क राम बुलाया,
क धनुष उठाया क सारा शहर जनकपुरी ऐ॥
आगे के पदों में लाहौर से मंगवाए "कैण्ठा" कंगन और घोड़ी
का उल्लेख है। वही पृ०—८१

८. जे धनष निं टुट्टे तां
मैं रेई सेइयो कुआरी जी
धनष निं टुट्टे दशरथ दे बालक न्याने
उमर छोटी बुद्ध सयानी॥ वही पृ० – १२५

९. चल निरख नैन सिया प्यारी दो राजकुमार बनि आए
सुनो सखो दी बाणी सिया दर्शन गी ललचाई॥

१०. सांवरिया आई उतरे न बागें च
क दोए आई उतरे बागें च
मिथलापुरी दी रुकमण
दर्शन पा रेई ए बागें च
नजर मिला रेइ ए बागें च॥ डोगरी लोकगीत भाग ५—पृ०—१३२

का भी उसे चाव है। मां की गोद से बिछुड़ने को पीड़ा और प्रियमिलन की उत्सुकता इन दोनों का सुन्दर मिश्रण इस लोकगीत में है।

दूसरी ओर राम के हृदय में भी कम उत्सुकता नहीं। घोड़े पर चढ़े राम को जब उनकी बहनें रोकती हैं तो वह उन्हें कहते हैं कि उन्हें बहुत देर हो रही है, उन्हें जल्दी जनकपुरी पहुँचना है।[11] राम के इसी उतावलेपन की झलक एक और गीत में है जहां सीता विवाहमण्डप में पहुँचने में देरी कर रही हैं। विवाह की वेशभूषा में वह पिता के सामने आने में सकुचाती हैं। उतावले राम स्वयं उन्हें बुलाने जा पहुँचते हैं और लज्जा से घबराई सीता को समझाते हैं कि मुहूर्त्त का समय केवल एक घड़ी है वह निकल जाएगा इस लिए उन्हें जल्दी पहुंचना चाहिए।[12]

बरात का दृश्य भी देखने योग्य है। रथ पहाड़ की उतराई पर से खिसकते चले आ रहे हैं। हाथी घोड़े भी हैं और श्री राम "बौंगले" पर चढ़े हुए हैं। "बौंगला" एक विशेष प्रकार की खुली पालकी को कहते हैं जिसमें वर बैठता है।[13]

सीता के पिता के लिए एक कठिनाई उपस्थित हो गई है। राम और रावण दोनों बरात लेकर आ पहुँचे हैं। कन्या तो एक ही है अतः राम को

---

११. जे स्हाड़ा बीर घोड़ी पर चड़ेया
भैंने बांहो दा फड़ेया, बीरा मुखों बोलदे क्यों नेई ?
छोड़ो-छोड़ो भैनों बडियों प्यारियो
हो रेई ऐ बौह्तड़ी देर, भैनों जाना जनकपुरी ॥

डोगरी लोक गीत भाग—४ पृ०—९३

१२. उठ हां सीतां सुत्तिये श्री राम बरने गी आए।
किया उठां मेरे काह्न जी मैं ते बावल कोला शरमान्नी आं ॥
बाबल कोला शरमान्नियें, स्हाड़ी वेदी दे लगन खंत्रानियें।
बावल दो गोदी हरी भरी स्हाड़ी बेदी दे लगन इक घड़ी ॥

१३. उच्चै चढ़ो के दिक्ख बावला
गड्ड ते रिढ़दो आई ए। गड्ड दे गडवान आए
हाथिएं हथवान आए, घोड़ेयां सुआर आए ॥
बौंगले श्री राम आए, अजें ते जान्नी थोड़ी ऐ ॥ वही पृ०—१३१

सीता मिलेगी, रावण खाली लौटेंगे।[१४] इस रूप में इस घटना का उल्लेख न तो वाल्मीकि ने किया है न तुलसीदास ने। स्वयंम्बर में आए राजाओं में रावण का उल्लेख आता है पर तुलसीदास के अनुसार वह शरासन को देखते ही चलता बना था।[१५]

सीता की विदाई के समय सखियां रोती हैं, मां की आंखों में आंसुओं की बाढ़ आ जाती है।[१६] पिता बेटी को विदा करके निश्चिन्त होकर सोयेंगे।[१७] डोली अयोध्या पहुँचती है तो राम की बहन गाती है कि जनकपुरी का प्रदेश बड़ा सुन्दर है अब अयोध्यापुरी को सीता के स्वागत में सुन्दर बनाओ। घर घर गैस जलाओ। मेरा भैया डोली लेकर घर आया है।[१८]

राजा दशरथ के द्वारा श्रवण कुमार के मारे जाने का वर्णन भी एक हृदय स्पर्शी लोक गीत में है।[१९]

---

१४. बावल घर इक कन्या, जान्नी दौं रिखियें दी आई
जी कुसी देयै इक कन्या, कुन्न जाना बचन थौं खाली।
जी राम जी गो इक कन्या, रावण जाना बचन थौं खाली॥
वही पृ० — १३४

१५. नृप भुजबलु बिधु सिवधनु राहू। गरुअ-कठोर बिदित सब काहू।
रावनु बानु महाभट मारे। देखि सरासन गवहि सिधारे॥
रामचरित मानस बालकाण्ड २४९ दोहे के बाद चौपाई

१६. डोगरी लोकगीत भाग ४

१७. वही पृ०—१४६

१८. जनकपुरी दा मुलक सुहाना
घर घर गैसां जगाओ,
बीरा डोला लेई घर आयो। वही पृ०—९३

१९. अन्धली ते अन्धला जलै दे व्यासे बेटा सरबन जल पलेया।
चन्नन रूक्खे कन्ने झोली टंगियै सरबन लेई करमण्डल पानिए गी जा॥
जिस बनै विच बोलन मोर कलाइयां उस बन पानी नाईं।
जिस बनै बिच डिड्डू ते मोनक उस बन्न पानिए गी जा॥
सारे बनै बिच सरबन फिरेया इक छप्पड़ी नज़र पेइए।
योदेया दा चलेया दशरथ राजा छप्पड़ी पर बैठ पठर बना।
जिस बेलै सरबन गड़बा डोबेया राजे दित्ता तीर चला॥
तीर जे लगदे सरबन डिग्गेया पेया रामो-राम ध्या॥

अयोध्या में राम के सुखी गृहस्थ जीवन का चित्र किसी डोगरी लोक गीत में नहीं मिला। "बारां म्हीनों" में जिनकी भाषा अवधी, ब्रज तथा डोगरी मिली जुली है राम लक्ष्मण और सीता के वन गमन का वर्णन है। चैत्र मास में केकई राम को वन जाने को कहती है। रामचन्द्र जी वन जाना स्वीकार करते हैं। लक्ष्मण सीता भी उन के साथ चले जाते हैं। कौशल्या हार तोड़ देती है, रोती-चिल्लाती है। पूरो अयोध्या आंखों से आंसू बहा रहो है। केकई ने खोटे वचनें का प्रयोग करके बनवास की प्रतिज्ञा ले ली है, अब भला पुत्र राम को कौन रोक सकता है।[२०]

पंचवटी में सुन्दर हिरण को देखकर सीता उसे लाने की प्रार्थना करती है ता राम उन्हें समझाते हैं कि यह कोई रावण का भेजा हुआ राक्षस है। परन्तु उनके बार बार कहने पर वह लक्ष्मण को छोड़ कर चले जाते हैं।[२१]

एक अन्य लोकगीत में सीताहरण का हृदयविदारक दृश्य वर्णित है। सीता पर्णकुटी में अकेली बैठी रसोई बना रही हैं। चन्दन की बिन्दिया उनके ललाट पर शोभा दे रही है। लंका के गढ़ से रावण भिक्षुक का वेष धारण कर कन्धे पर झोली डाल कर निकला है। सीता के आंगन में आकर वह अलख जगाता है। वह रेखा में बंधो भिक्षा लेना स्वीकार नहीं करता और हाथ बढ़ा कर भिक्षा देने को कहता है। हाथ बढ़ाते ही वह उसे उठा लेता है और लंका में पहुँचा देता है।[२२] वहां मन्दोदरी उससे पूछतो है कि तुम किसको स्त्री हो तथा

---

२०. भाद्रों नीर नैन से बगै रो रो करन बछूड़े।
राम कृष्ण रघुवर विष्णु कशल्या हार त्रोड़े॥
खोटे बचन तूं कहे ककेइयै कौन पुत्तर गी मोड़े।
जै सिया राम हुन सुन्नी अजुद्या नैनें नीर नचोड़े॥

२१. कत्ते दे बिच बोले राम जो तूं सुन भोलिये सीता।
मिरग नई कोई राशक मानु भेस मिरग़ दा कीता।
भेजेआ आया रावण दा जेड़ा फिरदा चुप चपीता॥

२२. पंचवटी बिच सीतां बैठी
अम्बर बदली छाई ओए
खल्लै देसा रावण चढ़ेया
चढ़ेया भेस बटाई ओए।
लक्ष्मण जोधै कार मारी
राम दी दुहाई ओए॥

किस की भाभी हो। सीता स्वाभिमान भरे शब्दों में कहती है कि मैं श्री रामचन्द्र की पत्नी तथा लक्ष्मण की भौजाई हूँ। "तो फिर इतने बड़े योधाओं को छोड़ कर यहां कैसे आई हो?" मन्दोदरी के इस प्रश्न के उत्तर में सीता मानों डुग्गर की वीरनारी के रूप में कहती है "तुम्हारा रावण मर गया है। तुम्हें वैधव्य देने आई हूँ।[२३] शत्रु के पंजे में कैद हुई नारी का यह स्वाभिमान बड़े-बड़े वीरों की वीरता को मात करता है।

शत्रु की पत्नी को इतना करारा उत्तर देने वाली सीता अपनी विरह वेदना किस से कहे। चैत्र की कड़ी धूप में उसकी विरहाग्नि और भी भड़क उठी है पर वह चुपचाप उसे सह रही है।[२४]

---

२३. भुर्ज पत्तर दी बनी कुटरिया
चनन बिन्दी लाई ओ।
गढ़ लैंका दा चढ़ेया रावण
मूंढे झोली पाई ओ।
माता सीता करे रसोई
बेडे अलख जगाई ओ।
बद्दी भिछेया लैन्दा नेइयो
देआं दस्त बधाई ओ।
दस्तु पगड़ी चुकी लैन्दा
लैंका बिच्च पुजाई ओ।
माता दमोदरी पुच्छना करदी
कोदी एं तूं इस्त्री
कोदी एं भरजाई?
श्री रामचन्द्र दी इस्त्री
ते लछमन दी भरजाई।
एडे जोधे छोड़े उत्थें
इत्थें कियां आई।
रावण तेरा मरी गेआ
रण्डेपा देन आई। डोगरी लोकगीत भाग—६ पृ०—२

२४ चढ़दे चेत्र घुप्प भखी ऐ। ए चढदे चैत्र घुप्प भखी ऐ।
सीता मनै बिच रैहन्दी चुप्प। कुसी दस्सां के दुख?
डोगरी लोकगीत भाग—१ पृ०—१३८

दूसरी ओर राम भी कम दुःखी नहीं। उन के बाग में अंगूर पक गये हैं। तोता मैना रुनझुन रुनझुन कर रहे हैं, तथा चुनचुन कर अंगूर खा रहे हैं। आनन्द मगन इन परियों को देख कर राम के मन पर क्या बीतती होगी यह जनकवि हमारी कल्पना पर छोड़ देता है। राम और लक्ष्मण अयोध्या के राजा हैं। राम की सीता चुरा ली गई है। राम लक्ष्मण को इस बात का और भी दुःख है कि उन्हें अपना भुजबल दिखाने का अवसर नहीं मिला। कोई उनके सामने सीता को जबरदस्ती ले जाना चाहता तो वे भी अपनी वीरता से सीता की रक्षा करके दिखाते या प्राणों की बाजी लगा देते पर ऐसा हुआ ही नहीं। राम लक्ष्मण सीता को ढूंढते ढूंढते थक गये हैं। हनुमान भी सीता को ढूंढने निकले हैं पर सीता का कोई पता नहीं चलता।[२५]

हनुमान लंका में पहुंच कर सीता के पास राम को अंगूठी फेंकते हैं तो वह राम के अनिष्ट की आशंका से डर जाती है।[२६] मन्दोदरी रावण को समझाती है कि तुम पराई स्त्री को घर ले आए हो यह तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा।[२७]

---

२५. रामै दे बागें बिच दाखां जे पक्कियां
मैना ते तोता चुनी चुनी खान्दे
मैना ते तोता रुनी-भुनियां लान्दे।
राम ते लछमन युधेया दे राजे
रामै दी सीता चोरिया गेई ऐ।
नई कोई जोरिया गेई ए।
हनुमान योघा तुप्पने गी चलेया

२६. अक्खीं देख के मुन्दड़ी डरेआ, ते ए मुन्दड़ी राम दी।

लोकगीत भाग १—६—१३६

२७. तुक्की पुच्छै मन्दोदरी माई
कुसरी लै आया नार पराई
तेरा काल गए दा आई
ते ए दिन मरने दे।

वही भाग—१ पृ—१३८

एक अन्य इसी से मिलते जुलते लोकगीत में लंका में हुए युद्ध का उल्लेख है। भगवान की सहायता से हनुमान हाथ का खण्डा बना कर अर्थात् नि:शस्त्र लड़ने को तैयारी करते हैं। फिर जंगल में निवास करते हुए रामचन्द्र भी लंका की ओर कूच करते हैं। योधाओं के युद्ध भूमि में कूदते ही जो कुछ होना है हो जाता है और तलवारों की दुहाई मच जाती है। "दर्सन पाया जोत सवाई" से राम की विजय का संकेत मिलता है।[२८]

होली पर गाए जाने वाले एक गीत में भरत का राम लक्ष्मण तथा सीता से मिलन दिखाया गया है। घर के बड़े कमरे "पसार" में चारों भाई मिलकर बैठे हैं और चारों की आंखों से आनन्दातिरेक के आंसू बह रहे हैं।[२९]

अयोध्या लौटने के बाद राम के जीवन की घटनाओं के विषय में केवल एक "बार" मिलती है जिसका प्रमुख पात्र लक्ष्मण है। चौदह वर्ष के बनवास में लक्ष्मण का तपस्या राम से भी बढ़कर थी क्योंकि वह नवविवाहिता उर्मिला को अयोध्या में छोड़कर आए थे। सम्भवत: उसकी इसी साधना के आधार पर डोगरी लोकगीतों में लक्ष्मण को सिद्ध योगी के रूप में अंकित किया गया है।[३०] इतिहास और कल्पना का सुन्दर मिश्रण इस "बार" में है। श्री रामचन्द्र अपने छोटे भाई लक्ष्मण को सलाह देते हैं कि वह गुरु गोरखनाथ को अपना गुरु बनाए। रो रो कर भाई से बिछुड़ कर तथा भौजाई सीता से

---

२८. करदा लड़ने दा सम्यान
मजनी एं सिरी भगवान् ते खण्डा हत्था दा।
चढ़ेया म्हीना माह बसाख, सिरो राम चन्दें आख
जिन्दे बिच जोआतु बास, इत्थोंआं कैं पुट्टी लेआ वास।
कूच ज लंक दे।
पौन्दे योधे होई होआई, फर फर खण्डे साहब दुहाई
दर्सन पाया जोत सवाई।

२९. मिली लै भरत सिया राम आए। उठ मिली लै।
राम बी आए लछमन बी आए, हनुमान आए उप्पर चौर करी कै।
उठ मिली लै।
बैठ पसारै मिले चौरे भाई, नैने दा नीर आवै ढली के।
उठ मिलो लै॥

३०. ओ लक्ष्मण जैसे जती नी होने
सीता जैसी नार होए डोगरी लोक गीत भाग—६ पृ०—१२५

आवश्यक शिक्षा लेकर वह गुरु के पास पहुंचते हैं। वहां उन्हें गउएं चराने, गोबर इकट्ठा करने, चारा लाने तथा बरतन लाने का आदेश दिया जाता है। लक्ष्मण बरतनों के लिए एक कुम्हारन सिरिया के पास गये। सिरिया का घोड़ा मर गया, पति को सांप ने काट खाया तथा बेटा बेहोश हो गया। कुम्हारन ने बहुत इलाज करवाए, मौलवी से "फांडा" भी करवाया, गुरु गोरखनाथ के आश्रम में भी गए पर कुछ न बना। निराश होकर लौटती हुई उसको रास्ते में लक्ष्मण मिले जिन्होंने उसका बालक, पति तथा घोड़ा ठीक कर दिया। कुम्हारिन ने ने सवा लाख बरतन लक्ष्मण को दिए। लक्ष्मण ने अपने प्रभाव से गोरखनाथ के सवा लाख चेलों को भोजन करवाया तथा जल पिलाया। गुरु गोरखनाथ यह सब देखकर पाताल चले गए। लक्ष्मण वहां भी पहुंचे। अन्त में गुरु गोरखनाथ ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया। हज़ारों वर्षों के अन्तर पर उत्पन्न हुए इन व्यक्तियों को इस लोकगीत में एक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया है। लोक साहित्य इतिहास पर कम और कल्पना पर अधिक आश्रित होता है। उसमें तर्क की अपेक्षा श्रद्धा को बड़ा स्थान दिया जाता है। इस गीत से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गुरु गोरखनाथ के आगमन से पूर्व यहां राम लक्ष्मण लोक धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग बने हुए थे अतः नाथपंथियों ने उन्हें भी गोरखनाथ के शिष्यों में गिनना आवश्यक समझा जैसे कि महात्मा बुद्ध को पुराणों में विष्णु का अवतार मान लिया गया है।

डुग्गर प्रदेश में अभी तक कनफटे नाथपंथी जोगियों के स्थान हैं। शुद्ध महादेव में इन जोगियों की गद्दी है। वैष्णों देवी के प्रारम्भिक पुजारियों में नाथपंथी श्रीधर पण्डित का नाम मिलता है। डोगरी की बारों तथा कारकों जैसे कि बिरबत नाथ को कारक, बाबा सिंह गोरिया को कारक राजा मण्डलीक की बार तथा राजा होडी की बार में गुरु गोरखनाथ का उल्लेख है।

गुरु गोरखनाथ का समय विवादास्पद है राहुल सांकृत्यायन इन्हें दसवीं शताब्दी में हुआ मानते हैं। डा० राम कुमार वर्मा ने ज्ञानेश्वरचरित्र के आधार पर उनका समय १३वीं शताब्दी माना है।

दार्शनिकता की दृष्टि से गोरखनाथ का मत शैवमत के अन्तर्गत आता है। राम लक्ष्मण को इस प्रकार गुरु गोरखनाथ से सम्बन्धित दिखाने वाले इस लोकगीत में धार्मिक समन्वय की भावना भी मिलती है।

कर्म-कर्तव्य

—चन्द्र कान्त जोशी

मन का लालच, धन का लालच,
लालच ललचाई आंखों का,
अरमानों के पवन हिलौरे,
सब को रोको, सब को रोको

स्वार्थ मरण है, परहित जीवन
यौवन का शृंगार क्षणिक है,
पाप कर्म का कर्त्ता भागी
और किसी को फल न तनिक है;
परहित साधो, परहित साधो।

निर्माण देश का भव्य देश का
करना है, बलिदान चाहिये,
तप कर निकलेगा स्वर्ण खरा
ज्वालाओ! वरदान चाहिये।
तन, मन, धन बलिदान चाहिये।

अन्तर की बोली कहती है
चुप चुप जो सब कुछ सहती है

मत बुझने दो यह दीप शिखा
अन्धकार में जग रहती है।
मत बुझने दो यह दीप शिखा।

अन्धकार में भटके राही!
किरण उषा की झांक रही है,
कब आओगे पथ पर सोधे
पल पल तुझ को आँक रही है,
ऊषा फिर से झांक रही है।

विष को मत तुम अमृत मानो
नहीं शूल यह फूल बनेगा,
धार वेग में बहने वालो!
धार कभी क्या कूल बनेगा।
नहीं शूल यह फूल बनेगा।

अधिकार छीनना निर्बल करू,
यह कपट जाल अधिकार नहीं
करुणा, तूफानों में नौका
फिर क्या गम यदि पतवार नहीं
करुणा तूफानों में नौका।

मनुज वही, जो मन को जीते
हृदय रक्त से जीवन सींचे
दीपक की आशा के सपने
स्नेह धार से क्षण क्षण सींचे।
मनुज वही जो, मन को जीते।

दृष्टिकोण

—शंकर शर्मा पिपासु

जीवन जिया गया
एक के सहारे से
एक ही की इच्छा पर
एक सी दिशाओं में बढ़ते हुए
एक ही की खोज में
बीहड़ बनों को भी था लांघ लिया
सागरों को पार किया
दुर्गम चढ़ाइयों पै चढ़ते हुए
छू लिया आकाश को
प्राप्त किया परम तत्त्व
मन में सुख शान्ति भरी
जोवन की तरी तरी
नाम हुआ दुनिया में
काम अर्थ धर्म मोक्ष
सहजता से पा लिया ।
जोवन जो जीते हैं
रहने के दुनिया में
सब हो सुभीते हैं
इस पर भी मन ही मन
बे-बस बेचारे से
पंगु अपाहिज से
देखते हैं चारों ओर
अगनित मशीनों को
भीमकाय यन्त्रों का
अनभाता शोर, थका
देता है मानस को
एक दूसरे से हम
कतरा के चलते हैं
एक दूसरे के हम
अरमान दलते हैं
अपने को जब दुख हो
सभी हाथ मलते हैं
अपनी ही पीड़ा को
पीड़ा सब कहते हैं
अपने ही स्वार्थ की
तरंगों में बहते हैं
अपने हो दोषों को
दूसरों पै मढ़ते हैं
जल थल नभ घूमते भी
अपनों से डरते हैं
त्रस्त भीत हो कर के
मानवता भूल भूल
ध्वंसकारी शस्त्रों का अस्त्रों का
करते निर्माण सभी
मन में सुख शान्ति नहीं
ऐसे ही जीते हैं
ऐसे ही जीते हैं
धरतो के पुत्रों का हमीं रक्त पोते हैं
जीवन जो जोते हैं
रहने के दुनिया में
सब ही सुभीते हैं
इस पर भी मन ही मन
वे बस बेचारे से
देखते हैं चारों ओर

बीन

— शिवनारायण उपाध्याय

हम तो तुम्हारे अधरों की बीन,
तुम सुखी तो हम सुखी,
तुम गमगीन तो हम गमगीन ।
तुमने सब देकर, सब सुख लिए छीन,
अपनी किस्मत ने हमें,
तुम्हारी गोद में ढकेल दिया है,
ध्रुव जैसे बैठाओ, या उठा दो,
तुम राजा हो "राजा", हम दीन हीन
स्वरों पर अंगुलियां धरो-धरो न धरो,
आंखें लाल-लाल, करो करो न करो,
झूठी ही बजाओ, बजाओ तो,
बेबस मन, बजे, बजे न भी बजे,
किन्तु अधरों से लगते ही,
बेचारी बजेगी ही बीन ।

श्री रामचन्द्र जी का लोकतन्त्रीय आदर्श

—सत्यपाल शास्त्री

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम का रामराज्य पूर्णतया लोकतन्त्रीय आदर्शों पर आधारित था। वह अधिनायकवाद, एकतन्त्रवाद तथा साम्राज्यवाद के दूषणों से सर्वथा मुक्त था। यही कारण है कि उन्हें इतिहासविद् राजतन्त्रीय शासन पद्धति का सर्वश्रेष्ठ सुधारक मानते हैं। उनके समकालीन कुछ राजाओं के राज्य में प्रजा के साथ जो दुर्व्यवहार हो रहा था तथा प्रजा का जिस जघन्यता से शोषण हो रहा था श्री राम के लिए वह असह्य था। उन्होंने उस प्रकार के राजाओं का नाश करके प्रजा का त्रास ही दूर नहीं किया अपितु अपने राज्य को प्रजातन्त्रीय पद्धतियों या आदर्शों पर स्थापित करके विश्व के सामने एक अद्भुत तथा अपूर्व उदाहरण उपस्थित किया। भले ही पश्चिमी इतिहासकार तथा अपने ही देश के कुछ मतों के अनुयायी उन्हें भगवान् का अवतार न मानें परन्तु हम कुछ योरोपीय इतिहासकारों के इस मत से सर्वथा सहमत नहीं है कि श्री राम होमर के काव्य ओडेसिस के नायक यूलिसेस के समान एक काल्पनिक व्यक्ति थे तथा वाल्मीकि रामायण इस काव्य की नक़ल है। यदि कुछ इतिहासकार आज भी इसी मत का समर्थन करते हैं तो वे इतिहास जैसे पवित्र विषय के साथ ही अन्याय नहीं करते अपितु अपने साथ तथा अपने पाठकों के साथ भी धोखा करते हैं।

आदि कवि वाल्मीकि ने उन्हें अपनी रचना में सर्वत्र एक आदर्श महापुरुष के रूप में ही चित्रित किया है। उनके उज्ज्वल व्यक्तित्व तथा

चरित्र का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं—राम धर्म का तो अवतार ही थे (रामो विग्रह वान् धर्म:), सत्याचरण में भी वह मानो स्वरूपधारी धर्म के समान थे (सत्ये धर्म इवापर:), तथा माता पिता की आज्ञा मानने वाले (धर्म निष्ठ:, सत्यसन्धश्च पितु र्निर्देशकारक:), निष्कपट (रामो द्विनभिभाषते), आदर्श पति, संयमी, लगन तथा उत्तरदायित्व से कार्य निभाने वाले, वीर, धर्म रक्षक, प्रजा प्रिय तथा संक्षेप में उनसे बढ़ कर संसार में कोई भी इतने संयम से सत्पथ पर चलने वाला नहीं है —

"न हि रामात्परो लोके विद्यते सत्पथे स्थित:"

वह यदि किसी के अन्याय पापाचरण तथा शत्रु के लिए कालाग्नि के समान हैं तो क्षमा करते समय उनकी सहनशीलता पृथ्वी के समान हो जाती हैं—"कालग्नि सहशो क्रोधे क्षमया पृथिवी सम:" नाटककार भवभूति तो उन्हें लोकोत्तर महापुरुषों में से एक कह कर उनके इन्हीं गुणों के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोहि विज्ञातुमर्हति।"

इन उपर्युक्त गुणों से विभूषित मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम में हमें उनके बाल्यकाल से ही लोकतन्त्रीय आदर्शों के बीज अंकुरित होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं जो क्रमश: एक विशाल बरगद के वृक्ष का रूप धारण करके अपनी शीतल सुखद छाया में हर धर्म और जाति के व्यक्ति को आश्रय देकर चिर सुख तथा शान्ति से भालान्वित करके आनन्द प्रदान करते हैं।

विश्वामित्र के आश्रम के पवित्र वातावरण में श्रीराम के गुणों का और अधिक विकास होता है। वहां रहते हुए राक्षसों और चोरों तथा दस्युओं का संहार करके वह ऋषि-मुनिओं के ही नहीं अपितु वहां बसने वाले सभी लोगों के प्रीति भाजन बन जाते हैं। वहां उन्हे ऋषियों तथा सभी वन्य जातियों को समीपता से समझने का समय मिलता है। वहां यदि वह ताड़का जैसी दुश्चरित्रा राक्षसी-स्त्री को लोक कल्याण की दृष्टि से मार देते हैं तो अहिल्या जैसी पति परित्यक्ता का उद्धार करके उसे फिर से समाज में रहने का अधिकार दिलवाते हैं। वह युवराज के रूप में अपने प्रजा-प्रेम के ही कारण अपनी प्रजा के दिलों में लोक नायक के रूप में स्थान बना लेते हैं। यही कारण था कि उनके वन गमन के समय सारी प्रजा में हा-हा-कार मच जाता है। मनुष्य ही क्या पशु-पक्षिओं की व्याकुलता भी वर्णनातीत हो जाती है—

"राम वियोग विकल सब ठाढे, जहँतहँ मनहु चित्र लिखि ठाढे।"
"नगर सकल जनु गह्वर भारी, खग मृग विपुल सकल नर नारी।"

इतना ही नहीं बालक, वृद्ध, जवान सभी उनके साथ चल पड़ते हैं—"बालक वृद्ध विहाय गृह, लगे लोग सब साथ।" परिणामतः स्थिति यह हो जाती है कि जब पहला पड़ाव आता है तो राम उनसे पीछा छुड़ाने की यह युक्ति सोचते हैं कि सभी को सोता हुआ छोड़कर आगे निकल जाना चाहिए, अतः उन्होंने वैसा ही किया। प्रजा जन उठ कर रोये-चिल्लाए और अपने घर को लौट आए।

श्री राम वन में जहां जहां भी गए या रहे वहीं उन्होंने अपने सद्व्य-वहार, आदर्श, मर्यादा तथा अपने लोकप्रिय गुणों से हर जाति के, हर प्रकार के व्यक्ति के हृदय में अपना स्थान बना लिया जो उनके लोकतन्त्रीय आदर्शों का परिचायक था। मल्लाह केवट, गुह राजा, तपोवन के अनेकानेक ऋषि, भोलनी शबरी, सुग्रीव, हनुमान तथा उनके साथी बनचर आदि सभी उनके मित्र, प्रेमी तथा भक्त बन गए। लोकनायक राम सब के थे और सब उनके हो गए। इससे स्पष्ट है कि श्री राम से बढ़ कर लोकप्रिय इस धरती पर शायद ही कोई अन्य व्यक्ति हुआ हो। श्री राम का बनवासकाल वस्तुतः उनका लोकनायक के रूप में विकसित होने का एक अभियान मानना चाहिए। शृंगवेर (वर्तमान उत्तर प्रदेश में सिंगराभउ नामक ग्राम) का राजा गुह जाति का शूद्र था। इस स्थान से लेकर सुदूर दक्षिण में किष्किन्धा प्रदेश (मैसूर राज्य का एक भाग) तक पहुंचते-पहुंचते श्री राम अपनी वीरता, सज्जनता, सहनशीलता तथा समत्व भाव आदि अनेक गुणों के कारण इस विशाल भूभाग के निवासियों के दिलों में अपना स्थान बना लेते हैं। उनका प्यार सब के लिए सांझा होता है। चाहे अत्रि, अगस्त्य, भारद्वाज जैसे ब्राह्मण हों, चाहे केवट, गुह, शबरी आदि जैसे शूद्र सज्जन लोग तथा[1] चाहे सुग्रीव, जांबवत जैसे बानर तथा रीछ जातिओं से सम्बन्धित बनचर, राम तो सबके अपने हैं।

चित्रकूट में उनकी कुटिया वहां के निवासी किरात और कोल जाति के लोग बनाते हैं। उनसे लाए हुए उपहार श्री राम खुशी से स्वीकार कर लेते हैं। जब ये लोग इन्हें हर प्रकार की सहायता देने का वचन देते हैं तब यह कहते हैं—

"रामहिं केवल प्रेम पियारा, जानि लेहु जे जाननिहारा
राम सकल बनचर परितोषे, कहि मृदु वचन प्रेम परिपोषे।"

---

१. किरात शबर पुलिन्दा म्लेच्छ जातयः अ. की.

राजा गुह तो राम के मित्र ही बन जाते हैं, इसी लिए राम को ढूंढने आए हुए भरत उनसे परिचय होने पर उनसे बड़े प्रेम से मिलते हैं—"राम सखहिं मिलि भरत सप्रेमा"। इसी प्रकार वह शबरी भीलनी के प्रेमभक्ति से भरे स्वागत से इतने विह्वल हो जाते हैं कि उसके जूठे बेर भी खा लेते हैं। स्पष्ट है कि श्री राम के हृदय में समाज के निम्नतम तथा असभ्य कहलाने वाले वर्ग के लिए भी कितना प्यार था। इसी को हम उनके लोकतन्त्रीय आदर्श का बीज मानते हैं, जो उनके राजा बन जाने पर प्रस्फुटित होकर पूर्णतया विकसित हो जाता है।

मनुष्य ही क्या राम तो पशु, पक्षी आदि जीवों के भी प्यारे हैं। सीता हरण के समय रावण के साथ लड़ाई करने वाले जटायु के भी राम बड़े कृतज्ञ हैं। उसकी मृत्यु हो जाने पर राम उसका संस्कार भी मनुष्य के समान ही करते हैं।

अभी तक जो कुछ कहा गया है उसका सम्बन्ध अधिकतर श्री राम के लोकतन्त्रीय आदर्श के भावनात्मक पहलु से है। अब उसके व्यावहारिक पक्ष पर विचार किया जाता है। श्री रामचन्द्र अपने वनवास काल में अनेक राक्षसों तथा दस्यु लुटेरों का संहार करके ऋषि-मुनियों तथा अन्य लोगों को सुख पहुँचाने के लिए हर समय कटिवद्ध रहते हैं। ऐसा करना तो उनका एक धर्म बन जाता है। जब उन्हें ऋषि उस स्थान पर ले जाते हैं जहां राक्षसों द्वारा मारे हुए ऋषियों की हड्डियों के ढेर पड़े थे तो उनका हृदय द्रवित हो जाता है, तथा आंखों से आंसू टपकने लगते हैं। उस समय वह प्रतिज्ञा करते हैं—

"निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन।
सकल मुनिन के आश्रमन, जाय जाय सुखदीन।"

फिर इस प्रतिज्ञा को निभाना भी उन्हीं के विरसे की बात थी। अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपनी प्रतिज्ञा को निभाना तो रघुवंशीय राजाओं का परम धर्म था—

"रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाएं वरु वचन न जाई।"

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार विराध राक्षस से लेकर खरदूषण आदि अनेक राक्षसों, डाकुओं तथा लुटेरे अत्याचारियों के गिरोहों का सफाया करके राम उस प्रदेश में बसने वाले सभी लोगों के बे-ताज सम्राट् बन जाते हैं। दण्डकारण्य[२] के

२. गोदावरी नदी का तटवर्ती प्रदेश जो आधुनिक नासिक से दो मील पर है।

पञ्चवटी नामक स्थान पर रहते हुए वह सुख, शान्ति तथा आनन्द का अद्भुत वातावरण उत्पन्न कर देते हैं। राक्षसों तथा दुष्टों का भय समाप्त हो जाता है। लोग सुख और चैन का जीवन व्यतीत करने लग पड़ते हैं। इनके इस वीरोचित कार्य का समाचार जब किष्किन्धा प्रदेश में ऋष्यमूक पर्वत पर बालिके भय से छुपे सुग्रीव को मिलता है तो वह हनुमान् को भेज कर इनसे मित्रता का प्रस्ताव करता है। वह अपने भाई बालि से बदला लेना चाहता था क्योंकि उसने बल-पूर्वक सुग्रीव को पत्नी अपने पास रख कर से घर से निकाल दिया था। इसी लिए राम सुग्रीव की सहायता करना स्वीकार कर लेते हैं और बालि को मार कर सुग्रीव को वहां का राजा बना देते हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि जब युद्धभूमि में श्री राम के शस्त्रों से घायल बालि राम से पूछता है कि—मैं आपका वैरी सुग्रीव मित्र ! यह कैसे ? तो श्री राम उत्तर देते हैं :—

"अनुज वधू भगिनी सुतनारी, सुन, शठ ये कन्या सम चारी।
इन्हें कुदृष्टि विलोकै जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई।"

उसी प्रदेश में रहते हुए श्री राम हनुमान् द्वारा सीता जी का समाचार प्राप्त करते हैं कि वह रावण की अशोकवाटिका में कैद है। तब वह बानरों, भालुओं तथा अन्य बनचरों की एक विशाल सेना सङ्गठित करके रावण के शक्ति शाली साम्राज्य पर धावा बोल देते हैं। यह भारत के ही इतिहास का नहीं अपितु विश्व-इतिहास भी एक अद्भुत उदाहरण है कि एक राजकुमार ने जंगली लोगों तथा बानरों की विशाल सेना बना कर किसी बहुत बड़े शक्तिशाली साम्राज्य पर आक्रमण करके उसे तहस-नहस किया हो। लोकप्रिय नेता की ऐसी मिसाल कहीं और नहीं मिलेगी।

फिर वह युद्ध केवल एक स्त्री को कारामुक्त करने के लिए नहीं लड़ा गया अपितु अत्याचार पर आधारित साम्राज्यवाद के विरुद्ध तथा लोकतन्त्रीय आदर्शों की स्थापना के लिए लड़ा गया। और यह करके भी श्री राम ने किसी का अधिकार नहीं छीना। सुग्रीव और विभीषण दोनों को उनके अधिकार मिले। श्री राम ने तो जिओ और जीने दो के सिद्धान्त को अक्षरशः अपनाया था। उन्होंने अत्याचारियों का नाश करके सिद्ध कर दिया कि चरित्रहीन और अत्याचारियों को राज्य की गद्दी पर बैठने का कोई अधिकार नहीं है। वस्तुतः यही उनके लोकतन्त्रीय आदर्शों का केन्द्र बिन्दु है।

राजा बनने के बाद तो श्री राम अपने लोकतन्त्रीय आदर्शों को अपनी प्रशासन पद्धति में समाविष्ट करने में पूर्णतया सफलता प्राप्त कर लेते हैं। उन्होंने

अपने एक पत्नीव्रत से तथा फिर उसे भी त्याग कर संसार को बता दिया कि वस्तुतः राजा वही है जो प्रजागुरुजन के लिए पत्नी को भी त्याग डाले तथा जिसका उद्देश्य भोग-विलास न होकर केवल प्रजा को हर प्रकार से सुखी रखना हो। इसी लिए उत्तर राम चरित् नाटक के अमर कलाकार भवभूति के शब्दों में राम इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं :—

"स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।"
१—११—१२

अर्थात् लोकाराधन के लिए स्नेह, दया, हर प्रकार का सुख और यहां तक कि एक मात्र पत्नी सीता को भी त्यागते समय मुझे कष्ट नहीं होगा।

श्री राम 'राजा प्रकृति रंजनात्' (राजा वही है जो प्रजा को प्रत्येक प्रकार से प्रसन्न रखे) इस परिभाषा को पूर्णतया अपने पर लागू करना चाहते थे तथा महाकवि कालिदास की इस उक्ति प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजान: न ज्ञातिभिः (राजा तो अपनी प्रजा के कारण बन्धु वाले होते हैं अपनी जाति से नहीं) के अनुसार ही अपने आपको प्रजा का बन्धु तथा हितचिन्तक मानते थे। इसीलिए तो श्री राम प्रजा के थे और प्रजा उनकी थी। वस्तुतः उस समय राजा का प्रजा के प्रति बड़ा उत्तरदायित्व होता था। उस पर अंकुश था। यही कारण था अपने घरेलु जीवन में भी वह शास्त्र मर्यादा के अनुसार चलते थे। यदि वह प्रजा से उनकी कमाई का छटा भाग लेता था तो उसकी हर प्रकार की सुख-सुविधा के लिए वह उत्तरदायी था "षड-भागस्य भोक्तासौ रक्षते न प्रजा कथम्" जीवन में अपनी ही पत्नी के साथ क्रोध में आकर झगड़ते हुए एक धोबी के ताने भरे बचन श्री राम को सीता जी का त्याग करने का निर्णय करने के लिए विवश कर देते हैं। उस समय वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करते, किसी की सम्मति नहीं लेते हैं तथा किसी सुझाव को सुनने के लिए तैयार नहीं होते हैं। गुरु वशिष्ठ तथा माताओं की अनुपस्थिति में उनका यह निर्णय लक्ष्मण आदि भाइयों पर एक वज्रपात सिद्ध होता है। पर श्री राम अब वज्र से भी कठोर हैं। उनका निर्णय राजा राम का निर्णय है व्यक्ति राम का नहीं। इसलिए लक्ष्मण को सीता जी को वन छोड़ आने की आज्ञा देते समय वह कहते हैं—"राजा रामः समाज्ञापयति" और जब सभी भाई इस विषय में कुछ कहने का साहस कर ही लेते हैं तो वह कहते हैं—"न चास्मि प्रति वक्तव्यः सीतां प्रति कथञ्चन' [१] कितना अपूर्व उदाहरण

१. दे. वा. रा. ७-४४-१६

है यह विश्व के राजाओं के इतिहास का। इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं १९३६ ई० में इंग्लैण्ड के सम्राट एडवर्ड अष्टम ने कुछ इसी प्रकार की परिस्थितियों में अपनी पत्नी के पक्ष में राज्य सिंहासन त्याग दिया था। इस विषय में तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो श्री राम का कार्य उक्त एडवर्ड महोदय से कहीं बहुत कठिन है। सम्राट् एडवर्ड पत्नी के पक्ष में राज्य सिंहासन छोड़ कर व्यष्टि में समा गए जबकि श्री राम प्रजा के लिए सीता जी का त्याग करके समष्टि के हो गए अतः जैप कि ऊपर कहा गया है कि श्री राम की तो केवल प्रजा ही बन्धु थी। व्यक्ति होकर जीने में अपेक्षाकृत अधिक शान्ति और सुख है जबकि समष्टि का होकर जीना तो दीपक के समान जलना है।

एक प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि श्री राम का राज्यतन्त्र लोक तन्त्रीय आदर्शों पर आधारित है तो वह अपने निर्णय के विषय में इतने कठोर क्यों थे? इसका उत्तर यूं दिया जा सकता है कि जो निर्णय प्रजा की भलाई के लिए हो, अन्याय के विरुद्ध हो, शत्रु का सामना करने के विषय में हो, न्याय पर आधारित हो तथा धर्म की रक्षा के लिए हो तो उसके विषय में ढील करने वाला कोई भी तथा किसी भी तन्त्र पद्धति का प्रशासक कभी सफल नहीं हो सकता।

श्री राम का लोकाराधन का व्रत तो उन्हें बिरासत में मिला था। इसी लिए वह कहते हैं—

'सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।
यत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता।"
उ. रा. १-११-४५

स्पष्ट है कि निरपराध सीता जी का परित्याग भी लोकाराधन के लिए ही था। वह जानते थे कि धोबी तथा अन्य लोगों के कहने के बावजूद सीता पवित्र है—

"उत्पत्ति परिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।
तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।"

परन्तु श्री राम के पास सीता पर लगे लोकापवाद के कलङ्क को धोने का सिवाय परित्याग के कोई अन्य साधन नहीं था। सीता जी की निन्दा उस समय धोबी के घर में नहीं वरन् सर्वत्र हो रही थी। फिर भी यह कठोर निर्णय करते समय उनके दिल पर क्या गुजरी होगी—

"ततो दुःखतरं भूयः सीतायाः विप्रवासनम् ।
पौरगणां वचनं श्रुत्वा नृशंसं प्रतिभाति मे ।"
वा. रामा. ७-५-७

सीता का त्याग मेरे लिए यद्यपि अति दुखदायी है परन्तु पुरवासियों में होता हुआ सीता का अपवाद तथा निन्दा को देखकर मुझे यही कठोर निर्णय लेना सही प्रतीत हो रहा है। अन्यथा यह निन्दा जो पानी की तरङ्गों पर पड़ी तेल की बून्द के समान फैल रही है कैसे रोकी जाएगी ?[४] इस लोकापवाद का समाचार देने के साथ-साथ इस कार्य के लिए नियुक्त गुप्तचर ने यह भी कहा था "महाराज, प्रजाजन आपको पाकर आपके पिताश्री को भी भूल गए हैं। आपके चरित्र की सभी प्रजाजन प्रशंसा करते हैं।[५]

सीता जी का परित्याग करने के बाद श्री राम का जीवन सर्वथा एक तपस्वी जैसा बन जाता है। लोकाराधन करते हुए प्रशासन करना ही उनका धर्म बन जाता है। प्रजा को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप से प्रसन्न रखना ही उनका दैनिक कार्य हो जाता है। उन्होंने निःस्वार्थ लोक सेवा का जो आदर्श उपस्थित किया है वह इतिहास में अपना उपमान स्वयं है। यही उनके राजधर्म की कुञ्जी है। राम के राजधर्म में समाज के सुख के लिए व्यक्ति के सुख का कोई मूल्य नहीं है इसीलिए सम्भवतः उन्हें शम्बूक ऋषि का वध करना पड़ गया होगा। केवट की भेंट स्वीकार करके गुह के साथ इतनी प्रगाढ़ मित्रता करके तथा शबरी के जूठे बेर खाकर उन्होंने पहले ही सिद्ध कर दिया था कि श्री राम न ही स्पर्शास्पर्श के विचारों को मानते थे और न ही उनके दिल में किसी जाति विशेष के व्यक्ति के साथ ही अधिक प्यार या घृणा थी। उनका प्यार सबके लिए एक समान था।

श्री राम ने अपनी प्रजा पर किसी भी प्रकार का कर नहीं लगाया था।[६] प्रजा हर प्रकार से सुखी थी। तुलसी दास जी के अनुसार प्रजा को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं था—

---

४. "बहुली भवन्तमपां तरङ्गे ष्विव तैल बिन्दुम्" रघु वं. १४-३८

५. सर्वे स्तुवन्ति पौराश्चरितं त्वदीयम्" रघु वं. १४-३२

६. दे. रघुवंश, १४-२३

"दैहिक दैविक भौतिक तापा
राम राज नहीं काहुहि व्यापा"

तुलसी जी के ही अनुसार श्री राम के राज्य में समत्व, प्यार, न्याय, धार्मिकता, समृद्धि तथा प्रसन्नता का राज्य था। महर्षि वाल्मीकि रामराज्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

प्रहृष्ट मुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभय वर्जितः।।
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्कर भयं तथा।
नगराणि च च राष्ट्राणि धनधान्य युतानि च।।
नित्य मूला नित्य फला स्तरवस्तत्र पुष्पिताः।
कामवर्षी च पर्जन्यः सूखस्पर्शश्च मारुतः।।

राम-राज्य में सभी लोग प्रसन्न, सन्तुष्ट, स्वस्थ, धार्मिक, किसी भी प्रकार की आधि, व्याधियों से मुक्त तथा अकाल के भय से मुक्त थे।

न वहां किसी को भूख का भय था, और न ही चोरों का भय था। राज्य के सारे नगर तथा राष्ट्र (प्रान्त) धन तथा अन्न से भरपूर थे।

वहां वृक्ष सदा फलों और फूलों से भरपूर रहते थे। बादल समय तथा इच्छानुसार बरसते थे तथा वायु सदा मन्द-मन्द चलती थी।

महाकवि कालिदास अपने महाकाव्य रघुवंश में लिखते हैं कि—श्रीराम के राज्य में लोग बड़े समृद्ध थे, व्यापारियों की दुकानें सदा सामान से भरी रहती थीं, लोग अवकाश के समय नावों में बैठ कर विहार किया करते थे तथा नगर के निकटवर्ती उद्यानों में भ्रमण करने के लिए जाया करते थे। संक्षेप में प्रजा उनके राज्य में हर प्रकार से प्रसन्न थी।[७] और सन्त तुलसीदास कितने सुन्दर शब्दों में राम राज्य की समृद्धि तथा शोभा का वर्णन करते हैं—

"खग मृग सहज बैर बिसराई, सबनि परस्पर प्रीति बढ़ाई।
मांगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज।

---

७. १४-३०

दंड यतिन कर भेद जहं, नर्तक नृत्य समाज ।
जीते मनहिं सुनिश्रा अस, रामचन्द्र के राज ।।[८]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि श्री राम का रामराज पूर्णतया लोकतन्त्रीय आदर्शों पर आधारित था। इसकी इन विशेषताओं के कारण ही महात्मा गान्धी जी ने स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर कहा था—हमें स्वराज्य तो मिल गया अब हमें देश में रामराज की स्थापना के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए, परन्तु खेद से कहना पड़ता है कि हम बापू की इच्छा को अभी तक पूरा नहीं कर पाए। हम उनके जन्म दिवस के समय उनके आदर्शों को अपनाने तथा देश में रामराज लाने की प्रतिज्ञा तो कर देते हैं परन्तु उसे व्यवहारिक रूप कहां तक दे पाते हैं, इसका निर्णय पाठक स्वयं कर सकते हैं।

———

८. रामचरित मानस पं. ज्वाला प्रसाद मिश्रकृत हिन्दी टीका
पृ० १०८५ से १०९२

J. & K. ACADEMY PUBLICATION